ISSN 2230-7001

The Journal of Indian Thought and Policy Research

(द जर्नल ऑफ इण्डियन थॉट एण्ड पॉलिसी रिसर्च)

(English & Hindi Bilingual Research Journal)

Year : 13 Issue : 1 November 2023

Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth, Prayagraj

ISSN 2230-7001

The Journal of Indian Thought and Policy Research

द जर्नल ऑफ इण्डियन थॉट एण्ड पॉलिसी रिसर्च

(An English-Hindi Bilingual Peer Reviewed/Refereed Research Journal)

Year 13 **Issue : 1** **November 2023**

Founder Patron
Shri Ashok Singhal

Patron
Dr. Murli Manohar Joshi Dr. Subramanian Swamy

Advisory Board
Dr. Bajrang Lal Gupta
Dr. Mahesh Chandra Sharma
Shri Salil Singhal
Dr. Kuldeep Chand Agnihotri
Shri Ravindra Mahajan
Shri Ashok Mehta

Editorial Board
Prof. Ishwar Sharan Vishwakarma
Prof. Harbansh Dixit
Prof. Susheel Kumar Sharma
Prof. Amar Pal Singh
Dr. Sanjay Kumar
Dr. Chandra Mauli Tripathi

Editor
Dr. Chandra Prakash Singh

Editorial Address : Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth
21/16, Mahaveer Bhavan, Hashimpur Road, Tagore Town, Prayagraj-211002 (U.P.)
E-mail : nationalthought@gmail.com +91-7007673044

Cite this issue as : 13 JITPR (I) 2023
Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth 2023

No part of this journal can be printed, published, photo copied, reproduced or stored in any retrievable system except with prior written permission of the proprietors of this publication.

It is clarified that the views expressed by the author of the articles published in the journal are their own and may not reflect the views of the Members of the Editorial Board.

Printed and Published by Dr. Chandra Prakash Singh (Director AVAP) at Prayagraj for the proprietors, Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth, 21/16, Mahaveer Bhavan, Hashimpur Road, Tagore Town, Prayagraj-211002 (U.P.)

CONTENTS

1.	संपादकीय	5-8
2.	Dr. Amar Pal Singh **National Education Policy, 2020 :** **Building A New Eco-System Of Education In India**	9-17
3.	Dr. Susheel Kumar Sharma **Decolonising Education: National Education Policy 2020**	18-53
4.	Dr. V. B. Singh **Revisiting Implementation of Education Policies in India: A Road Ahead**	54-69
5.	Dr. Rajeev Kumar **The Confluence of New Education Policy**	70-84
6.	डॉ. ओम प्रकाश सिंह **प्राचीन भारतीय मूल्यों की ओर लौटती शिक्षा**	85-94
7.	डॉ.चन्द्र मौलि त्रिपाठी **राष्ट्रीय शिक्षा नीति और स्कूली शिक्षा की चुनौतियां**	95-105
8.	डॉ. प्रमोद कुमार दुबे **भाषा और राष्ट्रीय अस्मिता**	106-125
9.	डॉ. हर्षमणि सिंह **भारतीय ज्ञान परम्परा के ऐतिहासिक साक्ष्य और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020**	126-130
10.	अशोक मेहता **राष्ट्रीय शिक्षा नीतिः सम्भावनाएँ एवं चुनौतियाँ**	131-134
11.	प्रांजल बरनवाल **व्यक्ति की शिक्षा में समाज एवं राज्य का उत्तरदायित्व**	135-141
12.	डा. हरबंश दीक्षित **उच्च शिक्षा में विदेशी संस्थाओं का प्रवेश**	142-144

सम्पादकीय

मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है सीखना। उसका अंतःकरण जितना अधिक संवेदनशील होता है वह उतना ही अधिक सीखता है। वह जड़-चेतन के साथ संयोग और क्रिया-प्रतिक्रिया से कुछ न कुछ आजीवन सीखता ही रहता है, लेकिन जब वह सुनियोजित रूप से, विशेष उद्देश्य को लेकर कुछ सीखता है या उसे सिखाया जाता है तब उसे शिक्षा कहते हैं। वास्तव में शिक्षा वह प्रक्रिया है जो समाज के व्यक्ति रूपी घटक के व्यक्तित्व को समाज के अनुकूल ढालती है, जिससे समाज और व्यक्ति के मध्य सामंजस्य स्थापित हो सके। यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति और समाज दोनों का उन्नयन होता है।

शिक्षा का संस्थागत स्वरूप तब खड़ा हुआ जब यह अनुभव किया गया कि व्यक्ति को समाज के अनुकूल बनाने तथा स्वयं उसके जीवन के विकास के लिए अन्य मनुष्यों के पूर्व अनुभवों की संचित राशि को आनेवाली पीढ़ियों तक कैसे संप्रेषित किया जाये। एक जीवन में मनुष्य अपने स्वयं के प्रयास और अनुभवों से बहुत अधिक नहीं सीख सकता और यह भी हो सकता है कि वह कुछ सीखने के स्थान पर गलतियों के द्वारा अपने स्वयं और समाज की क्षति कर दे, इसलिए यह आवश्यकता अनुभव की गई कि मनुष्य को योजना पूर्वक सिखाया जाये, जिससे वह सुसंगत जीवन जी सके।

शिक्षा की प्रक्रिया ज्ञानाभिग्रहण और सम्प्रेषण की भावना है, जिसे सरल रूप में सीखने और सिखाने की इच्छा कह सकते हैं। सीखने की इच्छा न हो तो शिक्षा प्रारंभ ही नहीं हो सकती। इसी प्रकार यदि सिखाने की इच्छा न हो तो व्यक्ति शिक्षक नहीं बन सकता। सीखने की इच्छा हो और सिखाने की भी इच्छा हो लेकिन सीखने-सिखाने के लिए उचित परिस्थिति न हो तब भी शिक्षण की प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती। शिक्षा के विषय में विचार करते समय इन तीनों पर विचार करना नितांत आवश्यक हो जाता है। शिक्षार्थी में सीखने की भावना, शिक्षक में सिखाने की भावना और सीखने एवं सिखाने की अनुकूल परिस्थिति, प्रक्रिया यही शिक्षा के नीतिगत पहलू हैं।

आजकल शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार हो गया है, परन्तु भारत में शिक्षा का इतना सीमित उद्देश्य न कभी था और न ही होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यक्तित्व का ऐसा निर्माण होना चाहिए जिससे उसका सर्वांगीण विकास हो सके। शिक्षा के माध्यम से सर्वांगीण विकास का अर्थ है व्यक्तित्व के आतंरिक पक्ष का विकास, आत्मनिर्भरता एवं समाज, संस्कृति और प्रकृति के सम्बन्ध, इन सब के विषय में सिखाया जाना और सीखना।

शिक्षा वह है जो शरीर को सक्षम बनाये, मानसिक अभिरुचि को दिशा प्रदान करे, बौद्धिक जिज्ञासाओं

को शांत करे, आत्मिक संतुष्टि प्रदान करे, प्रकृति और पर्यावरण के प्रति संवेदना उत्पन्न करे, नैतिक मूल्यों का विकास कर सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक करे और अंततः एक ऐसे मानव का निर्माण करे जो अपने जीवन निर्वाह में योग्य होने के साथ ही समाज के उन्नयन का वाहक बने।

शिक्षा एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है और न ही यह यांत्रिक पद्धति से पूरी की जा सकती है। इसके लिए सबसे बड़ी चुनौती शिक्षार्थी को उसकी अभिरुचि को ध्यान रखते हुए मानसिक रूप से तैयार करना और मन को व्यवस्थित करने के लिए वाह्यांतर संयम की होती है। स्वस्थ शरीर, एकाग्र मन, मेधावी बुद्धि और शांत चित्त व्यक्ति ही विषय के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकता है। जिज्ञासा, एकाग्रता, मेधा और धैर्य विद्यार्जन के लिए आवश्यक गुण हैं।

निःसंदेह यह अर्थ प्रधान युग है लेकिन शिक्षा को केवल अर्थ के तुला पर तौला नहीं जा सकता। शिक्षा का बहुआयामी उद्देश्य है। प्रमुख रूप से शिक्षा से अपेक्षा की जानी चाहिए कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को इस प्रकार से ढाल दे कि वह नकारात्मकताओं से मुक्त होकर समाज के अनुकूल बन सके। शिक्षा के अभाव में कोई व्यक्ति अशिष्ट, असभ्य और अपराधी बनकर समाज में अराजकता उत्पन्न करता है और ऐसे व्यक्तियों के नियंत्रण के लिए समाज को अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है, तब क्या यह शिक्षा की असफलता या शिक्षा के अभाव में समाज की क्षति नहीं है? केवल उत्पादक व्यक्ति ही नहीं बल्कि समाज के अनुकूल व्यक्ति निर्माण करना शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य होना चाहिए। शिक्षा आचार-विचार, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, उद्योग-व्यापार, नीति और राजनय सभी की संवाहक है।

भारतीय परंपरा में शिक्षा को सामाजिक दायित्व माना गया है। समाज में कोई व्यक्ति अशिक्षित या असंस्कारित है तो यह उस व्यक्ति की ही नहीं समाज की असफलता है, क्योंकि उसके असंस्कार और अशिक्षा का प्रभाव समाज पर पड़ेगा, इसलिए शिक्षा देना समाज का दायित्व है और शिक्षित होकर समाज हित को ध्यान में रखकर कार्य करना व्यक्ति का दायित्व है। व्यक्ति के कार्य के बदले उसके योग-क्षेम यानी आजीविका की चिंता करना समाज का दायित्व है और आजीविका के लिए उपार्जित धन में से भी लोकहितार्थ अर्पित कर भोग करना यह व्यक्ति का कर्तव्य माना गया है।

भारतीय संस्कृति में शिक्षा के इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षण पर व्यापक चिंतन ही नहीं हुआ है बल्कि इसे व्यावहारिक धरातल पर लम्बे समय तक संचालित भी किया गया। कौशल विकास, अर्थोपार्जन और उपभोग इन तीनों की ऐसी शिक्षा जो लोकहित के लिए बाधक न बने इसकी सम्पूर्ति के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को व्यक्ति का चार पुरुषार्थ माना गया। धर्म वह मर्यादा है जो अर्थ और काम को लोकहित के विरुद्ध नहीं जाने देती और उसके परिणाम स्वरूप मनुष्य जिस आतंरिक आनंद और संतुष्टि की अनुभूति करता है वही मोक्ष है। अतः पुरुषार्थ के आधार पर शिक्षा के चार पहलू हैं- मर्यादा की शिक्षा, अर्थ की शिक्षा, भोग की शिक्षा और संतुष्टि की शिक्षा। आजकल की सबसे बड़ी विसंगति यह है

कि अर्थ और भोग के प्राचुर्य के पश्चात् भी व्यक्ति को संतुष्टि नहीं है।

मुख्य रूप से देखा जाये तो शिक्षा व्यवस्था के चार प्रमुख पक्ष हैं- शिक्षार्थी, शिक्षक, पाठ्यक्रम और प्रबंधन। शिक्षा ग्रहण करने के लिए शिक्षार्थी के मनोभाव का तैयार करना यह शिक्षा की प्रथम आवश्यकता है। यदि शिक्षार्थी में जिज्ञासा ही न हो तो उसे कोई शिक्षित नहीं कर सकता। भारतीय शिक्षा पद्धति में जिज्ञासा के जागरण को बहुत महत्व दिया गया है। हमारे शास्त्रों में अथातो ब्रह्म जिज्ञासा[1], अथातो धर्म जिज्ञासा[2] जैसे सूत्रों से ही विषय प्रतिपादन प्रारंभ होता है। अथ = अब, अतः = यहाँ से (इसके बाद), जिज्ञासा = जनाने की इच्छा प्रारम्भ होती है। इसका अर्थ है कि इसके पूर्व कुछ हुआ था जिसके बाद जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। किसी ज्ञान के लिए इच्छा को उत्पन्न करना ही शिक्षा की सबसे बड़ी चुनौती है। यदि वास्तव में इच्छा उत्पन्न हो गई तो विद्यार्थी वह सब कुछ करेगा जो उसकी जिज्ञासा को शांत कर सके, लेकिन यदि इच्छा उसके ऊपर थोपी गई है तो वह उन मर्यादाओं का पालन तत्परता से नहीं करेगा जो शिक्षा के लिए आवश्यक हैं। श्रीमद्भागवद्गीता में इसका उल्लेख किया गया है कि सीखने के लिए शिक्षक के प्रति विनम्रता और सेवा यानी आदर का भाव रहेगा तभी उस विद्यार्थी की शंका शिक्षक पूरे मनोयोग से समाधान करेगा।[3] दोनों के मध्य जबतक मानसिक तादात्म्य नहीं होगा तबतक शिक्षा का आदान-प्रदान नहीं हो सकता। अतः शिक्षा के लिए पहली आवश्यकता शिक्षक और शिक्षार्थी की मनोदशा की तैयारी है।

शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षक की होती है। शिक्षक को दुर्लक्ष्य करके शिक्षा की संकल्पना पूरी ही नहीं हो सकती। शिक्षा एक संवेदनात्मक सम्प्रेषण है, जिसकी पूर्ति यंत्र द्वारा नहीं की जा सकती। निरुक्तकार यास्क के अनुसार आचार्य का कार्य केवल विद्यार्थी को शिक्षा देना ही नहीं है, अपितु उसमें सदाचार को धारण करवाना भी है। साथ ही बुद्धि में विभिन्न शास्त्रों के अर्थ का बोध कराकर उसे प्रबुद्ध बनाना है।[4] तैत्तिरीय उपनिषद् का मन्त्र शिक्षक की प्रामाणिकता के स्तर का परिचायक है। सम्पूर्ण शिक्षा देने के बाद शिक्षक यह कहता है कि जो हमारे सद्चरित्र हैं वही तुम्हारे लिए ग्रहण योग्य हैं, अन्य नहीं।[5]

शिक्षक और छात्र के पश्चात सबसे महत्वपूर्ण बिंदु पाठ्यक्रम का है। पाठ्यक्रम के निर्धारण में प्राचीन ज्ञान परम्परा के साथ-साथ देश, काल, परिस्थिति, प्रकृति, परिवेश का सम्यक ध्यान रखा जाना आवश्यक है, जिससे विद्यार्थी के बहुआयामी व्यक्तित्व का विकास हो सके।

शिक्षा का चौथा बिंदु व्यवस्था का है। हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था समाज आधारित थी, जो अंग्रेजों

1 ब्रह्मसूत्र 1/1/1

2 जैमिनीय धर्ममीमांसा 1/1/1

3 तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। श्रीमद्भागवद्गीता 4/34

4 आचार्यः आचारं ग्राह्यति, आचिनोति अर्थान्, आचिनोति बुद्धिं इति वा। निरुक्त 1/2

5 यान्यस्माकँ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।। - तैत्तिरीय उपनिषद्, शिक्षावल्ली, अनुवाक 11, मंत्र 2

के आने के पूर्व तक चलती रही। शिक्षा में राज्य का नियंत्रण अंग्रेजों द्वारा किया गया। इसके पूर्व राज्य सीमित संरक्षण और सहयोग प्रदान करता था वरना शिक्षा मंदिरों, गुरुकुलों और अपने-अपने क्षेत्र की कलाओं में निपुण लोगों द्वारा अपने आवास स्थलों आदि पर ही संचालित होती थी। येनकेन प्रकारेण शिक्षा पूरी तरह समाज आधारित थी, समाज अपना दायित्व समझकर उसका निर्वहन करता था। कोई मेधावी विद्यार्थी, जिसमें पढ़ने की जिज्ञासा हो वह धनाभाव के कारण पढ़ने से वंचित न रह जाये इसका पूरा ध्यान रखा जाता था।

शिक्षा किसी राष्ट्र या समाज की आधार स्तम्भ होती है। स्वराज के पश्चात् एक लम्बा कालखंड व्यतीत हो चुका है। इस बीच शिक्षा पर अनेक आयोग, प्रतिवेदन और नीतियाँ बन चुकी हैं, लेकिन राष्ट्र निर्माण में हमारी शिक्षा की अभीप्सा कितनी पूरी हुई है यह विचारणीय है। सन् 2020 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा हुए भी तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। प्रबुद्ध जनों द्वारा शिक्षा नीति की सम्यक समालोचना एवं क्रियान्वयन की दशा और दिशा पर विचार करने की महती आवश्यकता है। उपरोक्त उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'द जर्नल ऑफ इंडियन थॉट एंड पॉलिसी रिसर्च' का यह अंक 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है इस अंक के माध्यम से सुधी पाठकों को शिक्षा नीति को और अधिक समझने और विचार करने की प्रेरणा प्राप्त हो सकेगी।

-डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह

NATIONAL EDUCATION POLICY, 2020 : BUILDING A NEW ECO-SYSTEM OF EDUCATION IN INDIA

Dr. Amar Pal Singh[1]

It is by way of Education that human potential find its fullest development. Whether formal, informal, or non-formal, education naturally leads to development through changes in knowledge, behaviour, and practises. Education is an investment that results in growth, as Nelson Mandela observed once, that "education is the most powerful weapon you can use to change the world." National Education policy, 2020 put it precisely, that education is fundamental for achieving full human potential, developing an equitable and just society and thereby promoting national development. Indeed, education increases the propensity for better human living and better employment opportunities. Education, not only makes a smart, informed population, but it boosts economic growth and increases the GDP of a country. It allows people to live a healthy and quality lifestyle with a high standard of living. This paper is an attempt at articulating some of the major contours of National Education Policy, 2020, which seeks to give a new break to the entirety of educational paradigm in India in view of the new evolutionary trajectory of our socio-political system. It must be mentioned at the outset, that this is not an exhaustive review of the National Education Policy, but just a few major contours that this paper attempts to articulate.

One thing that can safely be said about National Education Policy 2020 is, that this policy makes a complete break from the past. India has seen around a dozen documents during last 150 years or so in the name of education policy. Right since Wood's Dispatch to Hunter commission of 1882, Radhakrishnan Commission on University Education, Kothari Commission and then two major policy documents by government of India, one in 1969 and then National Education Policy, 1986, all of

1 Professor of Law, University School of Law and Legal Studies, Guru Gobind Singh Indraprastha University, New Delhi.

these toed a certain ideological line and presented comparatively a bland document. The National Education Policy-2020, marks a significant shift in terms of definitional clarity, the clarity of purposes, mainstreaming of Indian heritage, values and culture and importance given to local languages and multilingualism. None of the policy on education prior to this has ever come up with an agenda so transforming and so comprehensive as the one presented by National Education Policy, 2020. Rightly therefore the introductory chapter of National Education Policy notes that "the world is undergoing rapid changes in the knowledge landscape……with various dramatic scientific and technological advances, such as the rise of big data, machine learning, and artificial intelligence, many unskilled jobs worldwide may be taken over by machines, while the need for a skilled workforce, particularly involving mathematics, computer science, and data science, in conjunction with multidisciplinary abilities across the sciences, social sciences, and humanities, will be increasingly in greater demand. With climate change, increasing pollution, and depleting natural resources, there will be a sizeable shift in how we meet the world's energy, water, food, and sanitation needs, again resulting in the need for new skilled labour, particularly in biology, chemistry, physics, agriculture, climate science, and social science……." The National Education Policy, 2020, precisely seeks to take care of this changing paradigm of India, nay the world's evolutionary trajectory, where India is expected to play a dominant role and therefore preparing the workforce of the country to meet the said emerging challenges, is the prime target of the National Education Policy, 2020 (NEP).

The policy states that the rich heritage of ancient and eternal Indian knowledge system and the thought process that goes alongwith it has been the guiding light of this policy. As has been noted above that the NEP marks a complete break from the past such policies during last hundred and fifty years of India's contemporary life and emphasises on the Indian thinking and Indian knowledge system, in an attempt to remove every trace of colonial mindset. Rightly therefore the policy talks about the pursuit of Knowledge (Jnan), wisdom (Pragya) and truth (satya) as the ultimate goals of this policy. Needless to mention that Indian thought and philosophy has always considered the pursuit of knowledge, wisdom and truth as the highest human goal, which have been marked out as the ultimate goals of this NEP as well. The aim of educational process in ancient India was not just the acquisition of knowledge as preparatory for life process in this world, but the complete realization and liberation

of the self. Rightly therefore the policy lays emphasis not only on the development of the creative potential and cognitive capacities of each individual, which involves foundational capacities and literacy and numeracy, but also evolving the higher order cognitive capacities such as critical thinking and problem solving, which entails social, ethical and emotional capacities of dispositions.

After all, the purpose of all kinds of education systems is to develop good human beings who are capable of rational thought and action and also possess compassion, empathy, courage and resilience of individual personality which enable them to have sound ethical moorings and values. The citizen therefore is expected to contribute in building an equitable, inclusive and plural society as envisaged in our constitutional document. This will generate a system rooted in Indian ethos, contributing directly to transforming India, sustainably into an equitable and vibrant knowledge society, which is likely to make India a global knowledge superpower as well. May I express a sentiment here? India has never dreamt of becoming a superpower which creates awe and fear in the minds of the neighbours and adversaries, but a soft power, a 'Vishwaguru', in whose presence the individuals and nations feel ennobled and elevated. This is precisely the purpose of National Education Policy, 2020.

It must be taken note of that in a quickly transforming employment landscape, what is important is not only to make the students learn things to fit in the emerging global ecosystem, but more importantly, to make them learn, how to learn. Education, it must be appreciated, need to move towards less content, and more towards learning about how to think critically and solve problems, how to be creative and multidisciplinary, and how to innovate, adapt, and absorb new material in novel and changing fields. Pedagogy, therefore, must evolve to make education more experiential, holistic, integrated, inquiry-driven, discovery-oriented, learner-centred, discussion-based, flexible, and, of course, enjoyable. In short the education need to be more well-rounded, useful, and fulfilling to the learner. A very interesting aspect of this NEP, as has been noted above is the emphasis on education being a tool to, build character, enable learners to be ethical, rational, compassionate, and caring, while at the same time prepare them for gainful, fulfilling employment. It is noteworthy that none of the educational policies during these hundred and fifty years has ever talked about education building character, helping one to be ethical and compassionate etc. This NEP, precisely does that and talks about not only developing cognitive capacities of an individual but also his social, ethical and emotional capacities and dispositions.

Talking about the language policy, one may note that while in the pre-independence era, the colonial policy aimed at creating a class of clerks, Indians in name and look but British in their habits and culture, the post-independence language policies have never been categorical in their approach and intent. While, the Constitution accepted Hindi, written in Dev Nagari script as the official language of the Union, English continued to be the official language of the Union by and large. This of course is the result of a very faulty three language formula, which was neither formulated nor implemented with a clean approach towards linguistic policies. We were always reminded that more of national languages meant more of a confusion and more of discords and the national level. National Education Policy for the first time, adopts a completely new approach towards linguistic policies and talks about promoting multi-lingualism. It may be mentioned in this context that researches in educational and child psychology has proved it beyond doubt that children pick up languages extremely quickly between the ages of 2 to 8 and that Multi-lingualism renders great cognitive benefits to young students. As such those children who are exposed to multi-lingual environment in their early childhood are generally the ones whose critical thinking and problem solving skills are of higher order. Needless to mention that a particular emphasis is expected to be on mother tongue for the purpose of building foundational literacy.

Getting back to multi-lingualism as a policy for the entirety of the system, it talks about fostering of Indian languages, art and culture and promotion of Indian Languages in teaching process. For the purpose of ensuring easy and ready availability of materials the policy talks about establishment of a Translation Directorate and high quality programmes and degrees in translation and interpretation. Apart from this the policy emphasises on mainstreaming of Sanskrit, which is known to be the mother of all Indo-European languages. Special programmes are expected to be initiated for the purpose of integrating Sanskrit in educational programmes, e.g., institutions of classical languages shall be established and variety of scholarships shall be granted for students of Indian languages, art and culture. Sanskrit shall be offered at all levels of school and higher education as an important, enriching option for students.Apart from Sanskrit, India, has been endowed with rich literature in several classical languages, like, Tamil, Telugu, Kannada, Malayalam and Odia. Therefore, in addition to Sanskrit, other classical languages and literatures of India shall also be made available in schools as options for students, for the purpose of ensuring that these languages and literature

stay alive and vibrant. This is an extremely heartening dimension of NEP, 2020 and shall go a long way in not only protecting the classical languages of India, but also enhancing the sense of pride in Indian heritage and culture for generations to come.

While there is an overall effort at restructuring of education from pre-school to primary to middle, secondary and higher education, a very special care has been taken to ensure a balanced childhood care and education for all children. The policy envisages a system of 5+3+3+4, covering the age group of 3 to 18. First, five years have been split into two. Age 3 to 6, the pre-school education, which shall be delivered in either Anganwadi system, Balvatika or other kind of pre-school systems. Age 6 to 8, would be class 1 and 2. The next 3, would cover the age of 8 to 11, which shall finish child's primary education, i.e. 3, 4 and 5th class. Next 3 is the age group of 11-14, which shall be middle classes, from 6 to 8 and finally 4, which shall cover class 9th to 12th in the age bracket of 14 to 18. The whole idea is to ensure a critical care of the child, at a time when 85 to 90 percent of brain development of child is happening. Quality early childhood care and education is not available to crores of children in the country. The Policy aims to ensure that optimum evolution of human personality during the critical and early childhood period, in terms of physical and motor development, cognitive development, socio-emotional and ethical development, cultural and artistic development and development of communication and early language literacy and numeracy. This shall ensure that the potential of young children is fully developed in an all-round and healthy manner, which shall prepare a foundation for rest of their lives.

It may not be out of place to mention here that ASER surveys (Annual Status of Education Report) during last one decade or so have demonstrated that despite the fact that over five crore children are in elementary schools, at the moment, there is an apparent learning crises through which we are passing through these days and large number of these students are not able to achieve basic literacy and numeracy. The NEP therefore makes it an urgent national mission, with immediate measures to be taken on many fronts with clear goals that will be attained in the short term. The highest priority is to be given to achieve universal foundational literacy and numeracy in primary schools by 2025. Needless to say that the rest of the policy and efforts for educational endeavours at all levels would be relevant only when this basic mission of foundational literacy and numeracy is achieved. Due to the scale of crisis in the learning process at the moment, all viable methods will be explored to support the

teachers in the mission of attaining universal foundational literacy and numeracy.

A special emphasis of the NEP is on the holistic development of learners and therefore an overall thrust of curriculum and pedagogy reform across all stages will be to move the education system towards real understanding and ensuring that students not only learn the things that they are made to learn but also learn, how to learn, away from the culture of rote learning, which appear to be endemic in the system. The purpose of education is not only the cognitive development of the child but also building his character and creating a holistic and well-rounded individuals equipped with the skills of 21st century. After all education is an effort at manifesting the perfection and the potential of an individual which is deep seated in his personality. Specific set of skills and values across domains are likely to be identified for integration and incorporation at each stage of learning, from pre-school to higher education. Experiential learning, which has been made the over-all goal of all efforts through this NEP, include hands-on learning, arts-integrated and sports integrated education, storytelling based pedagogy, amongst others. Reduction in contents and flexibility in curriculum, is likely to promote constructive and critical thinking as against rote learning.

Student centric and learn by doing methods shall be designed to make learning process a fun activity that result in shaping the personality of the child. Teaching a young student the importance of doing what is right, and then presenting a logical framework of ethical decision making process would prepare a psychological background of right orientation and then in later years the same could be expanded to making students aware as to the themes of cheating, violence, plagiarism, littering, tolerance, equality and empathy etc. This shall enable the child to embrace moral and ethical values in conducting one's life, formulate a position or an argument about ethical issues from variety of perspectives and use ethical practices in all work. This shall prepare the methodological mindset, which shall appreciate the basics, such as ethical reasoning, traditional Indian values, basic human values and constitutional values, like equality, liberty, fraternity and unity and integrity of the nation.

One of an ailments that has been a pain point in India's educational system is the issue of assessment, which has always been summative rather than formative and emphasis on tests, wherein rote memorization is the norm, has been hampering the development of overall personality of a child. The NEP seeks to usher into a more competency based examination system that is really formative in character and

promotes learning and development for our students and tests their higher order skills, such as analysis, critical thinking and conceptual clarity. NEP proposes setting up of National Assessment Centre PARAKH (Performance Assessment, Review, and Analysis of Knowledge for Holistic Development), which shall be standards setting body under Ministry of Education, which shall fix the norms, standards and guidelines for students assessment and help the State Achievement Survey and National Achievement Survey in monitoring the overall progress of the learning systems.

The position of a teacher in Indian tradition has always been at the centre of learning process and the NEP, puts in so many words, that teachers truly shape the future of our children - and, therefore, the future of our nation. It is because of this noblest role that the teacher in India has always been the most respected member of society. The NEP talks about several methods of ensuring that the very best in teaching profession enter the profession and that a congenial environment of not only teaching and learning but also of their career progression is managed properly and that they are given continuous opportunities for self-improvement and to learn the latest innovations and advances in their professions.

NEP takes note of the prevailing socio-political conditions of the country and the inequality that persists in access to education and developmental process. It acknowledges that education is the single most important tool of social justice and equality and therefore inclusive and equitable education is not only an essential goal in its own way, but also very critical in achieving an inclusive and equitable society, in which every citizen has an opportunity to dream, thrive and contribute to the national building. There are regions in the country which have large sections of educationally disadvantaged sections of society. The NEP seeks to ensure the goal of equity, by earmarking special educational zones, wherein concerted efforts could be made to improve the situation of the disadvantaged sections of the society.

Turning to higher education, the NEP acknowledges that higher education plays an extremely important role in promoting human as well as societal well-being and in developing the country as envisaged in the Constitution - a democratic, just, socially- conscious, cultured, and humane nation upholding liberty, equality, fraternity, and justice for all, ensuring dignity of the individual. Therefore the policy envisions that higher education must, at societal level, enable the development of enlightened, socially conscious, knowledgeable and skill oriented system that can find solutions and seek robust solutions of the same. The policy proposes to do a complete

overhaul and re-energise the higher education system to overcome the contemporary challenges and thereby deliver high quality higher education with an emphasis on inclusivity and equity. The most important recommendation of this policy is of course regarding the structure of higher education. It has been proposed that over a period of time, every college would develop into either an Autonomous degree-granting College, or a constituent college of a university - in the latter case, it would be fully a part of the university. With appropriate accreditations, Autonomous degree-granting Colleges could evolve into Research-intensive or Teaching-intensive Universities, if they so aspire. Steps are proposed to be taken towards developing high quality higher educational institutions both in public and private sector, with local or Indian languages as the medium of instructions.

Multi-disciplinarity has been treated as the future of education and has been talked about more than once in the NEP. A holistic and multi-disciplinary education, aiming at the development of all capacities of human beings, intellectual, aesthetic, social, physical, emotional, and moral in an integrated manner. Such an education will help develop well-rounded individuals that possess critical 21st century capacities in fields across the arts, humanities, languages, sciences, social sciences, and professional, technical, and vocational fields. With these aims in view the policy proposes undergraduate degree to be of either 3 or 4-year duration, with multiple exit options within this period, with appropriate certifications, e.g., a certificate after completing 1 year in a discipline or field including vocational and professional areas, or a diploma after 2 years of study, or a Bachelor's degree after a 3-year programme. This is one of a never before phenomenon that NEP seeks to introduce in the Indian education system.

Research and innovation is another area which has been one of a focal points of NEP-2020. The policy notes that India spends less than one percent of GDP on research and innovation, while developed countries spend as much as 3 to 5 percent of their GDP on research efforts. Therefore the higher educational institutions are expected to focus on research and innovation by setting up start-up incubation centres; technology development centres; centres in frontier areas of research; greater industry-academic linkages; and interdisciplinary research including humanities and social sciences research. At a time when rapid changes are occurring in the world, in the realm of climate change, population dynamics and management, biotechnology, an expanding digital marketplace, and the rise of machine learning and artificial

intelligence etc, the policy acknowledges that if India is to become a leader in these disparate areas, and truly achieve the potential of its vast talent pool to again become a leading knowledge society in the coming years and decades, the nation will require a significant expansion of its research capabilities and output across disciplines.

For this reason the policy envisages the establishment of a National Research Foundation (NRF) to support and catalyse the research efforts at every level and in every field of learning. The policy does not intend to eliminate the existing research granting institutions like, Department of Science and Technology (DST), Department of Atomic energy (DAE), Department of Bio-Technology (DBT), Indian Council of Agriculture Research (ICAR), Indian Council of Medical Research (ICMR), Indian Council of Historical Research (ICHR), and University Grants Commission (UGC), etc., but sets up the task for the NRF to support and nurture the research eco-system in the country across all disciplines.

There are other things that National Education Policy seeks to address and usher in a more energised system of learning and research, like, restructuring the entire regulatory environment of education system in India. Higher Education Commission of India (HECI), is envisaged with four major verticals, i.e. Regulatory council, Accreditation Council, Grants Council and General Education Council for standards setting. These and several other directives of NEP seek to usher into an entirely new and invigorated system of education and research, which is crucial for the country at a critical level of developmental process. When India is looking ahead to become the engine of growth for the entire world and is emerging as an influential member in the world community, the National Education Policy is expected to play a crucial role in ensuring that every single effort of the country is built upon to support the emerging idea of India, that is likely to play a crucial role in the comity of nations as a friend philosopher and guide and to probably fit in the role of 'Vishwaguru' that once Bharat was.

●●●

DECOLONISING EDUCATION: NATIONAL EDUCATION POLICY 2020

Dr. Susheel Kumar Sharma[1]

तत्कर्मयन्नबन्धायसाविद्यायाविमुक्तये।
आयासायापरंकर्मविद्यऽन्याशिल्पनैपुणम्।।[2]

> [What is karma (action)?] That which does not promote attachment (bondage) is karma/action (deed); [What is knowledge?] That which liberates (from bondage) is knowledge; All other actions (deeds) are mere tedious (pointless) effort/hardship; all other knowledge is merely another (form of) skill/craftsmanship.

India has a huge educational infrastructure: more than one thousand odd universities[3], 23 IITs, 20 IIMs, 19 AIIMS, and more than fifty-five thousand colleges. These impressive figures are not a matter of pride, either for those who consider liberation (from bondage) to be the objective of education nor for those who judge an institution by world rankings. On the basis of the output of these institutions in terms of man-power, India boasts of the third-largest scientific and technical manpower in the world but our contribution in basic and technical research is almost negligible. We have not been able to produce any Aryabhatta, Baudhayan, Bhāskara II, Bhaskaracharya, Brahmgupta, Chanakya, Charaka, Dhanvantri, Gargi, Kanada, Mahaviracharya, Maitreyi, Nagachandra, Nagarjuna, Panini, Patanjali, Pingala, Sankardev, Sushruta, Thiruvalluvar or Varahamihira worth the name in our modern-day institutions. Only three Indian universities[4] rank in the top-200 positions in the latest QS World University

1 ORCID ID: 0000-0002-2220-072X, Professor of English, University of Allahabad, Prayagraj-211002, INDIA, M/ WhatsApp: 9450868483, Email: sksharma@allduniv.ac.in

2 विष्णु पुराण- 1-19-41

3 Total 1026 universities: 54 central Universities, 443 state universities, 126 deemed universities, 403 private universities, in November 2021.

4 Indian Institute of Technology (IIT) Bombay secured 177th position, IIT Delhi185th rank and Indian Institute of Science (IISc), Bengaluru186th position. https://www.livemint.com/education/news/three-indian-universities-in-top-200-in-qs-world-rankings-iisc-ranks-1st-for-research-11623238368230.html

Rankings[5] 2022. None of the traditional Central or the State universities could reach anywhere near. A tree is known by its fruit. There is a large-scale discontent with the products of today's education. None of the stake-holders -- society, industry, parents, educators and even the students -- seems to be satisfied with the effort and the product. The common charge is -- the educational institutions are preparing lazy, self-centred, unemployable, unproductive, irresponsible, and greedy shirkers with a highly colonial attitude and mind-set. They are at best certificate holding, self-conceited, roaming mavericks who try to be very shoddy copies of the European colonisers. Surely, there is something rotten in our modern-day education system. The following lines from Sudama Pande Dhumil's long poem, "Patkatha" ("A Script") express a layman's disenchantment of an educated person:

मैं रोज देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का	I observe daily some part of the system's
एक पुर्जा गरम होकर	Machine gets separated
अलग छिटक गया है और	After getting heated and
ठण्डा होते ही	Soon as it cools down
फिर कुर्सी से चिपक गया है	It gets clung to some chair.
उसमें न हया है	It displays no shame, no mercy.
न दया है	No - I don't have any sympathiser here.
नहीं- अपना कोई हम दर्द	I have tested each one of them.
यहाँ नहीं है। मैंने एक-एक को	I've appealed to each one of them.
परख लिया है।	I've knocked on everyone's door
मैंने हरेक को आवाज़ दी है	But, all in vain … I have found them
हरेक का दरवाजा खटखटाया है	All impotent. All of them are the
मगर बेकार ... मैंने जिसकी पूँछ	interpreters of the coffers.
उठायी है उसको मादा	They are lawyers. They are scientists.
पाया है।	They are teachers. They include leaders,
वे सब के सब तिजोरियों के	Philosophers, authors, poets and artists.
दुभाषिये हैं।	In other words: it is a joint family of the
वे वकील हैं। वैज्ञानिक हैं।	Culprits using the language of law.

5 QS uses six indicators to compile the ranking: Academic reputation (AR), employer reputation (ER), citations per faculty (CPF), faculty/student ratio, international faculty ratio and international student ratio. Ibid

अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक
हैं। लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।
यानी कि-
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।
- 'पटकथा' से, सुदामा पांडे धूमिल[6]

- from "A Script" Sudama Pande Dhumil
(translation by the author of the article)

Traditionally speaking, Education in India was never the concern of the rulers. Even during the Mughal rule, it was the case. The Western educational activities in India, in the form of educational institutions under the control of the Christian missionaries started with the consolidation of the Portuguese rule. The process continued even during the British rule though at times there was also a confrontation between Christian missionaries and the East Indian Company officials. For example, the British company government imposed a ban on the activities of Serampore Mission so the latter had to found their Baptist Missionary Society at the Danish settlement. This conflict was there because the missionaries wanted to proselytise through education while the British were apparently trying to keep a secular face for increasing their acceptability among the masses. For the British Govt, their acceptability to the masses was more important than educating the people. For example, one of the declassified papers, dated June 1, 1916, indicates that the British were not in favour of sending the "young chiefs, or heirs of Chiefships, or minor members of Ruling Families" to England for no special courses had been designed for them. And the local population may not like to be reigned by a person who had obtained Christian education.[7]

The modern Indian educational system, the brainchild of Macaulay, is a highly respected colonial remnant which runs on the presumptive principle of the "intrinsic superiority of the Western literature, metaphysics and science"[8]. English Medium teaching both at school and university level greatly strengthens the Macaulayan presumptive principle. As a result, Indian Education system, education, and science

6 www.hindi-kavita.com/HindiSansadSeSarakTakSudamaPandayDhoomil.php

7 The letter addressed to J B Wood, dated 1 June 1916, Catalogue reference: BL/LPS/11/75 Image Reference:1, www.movinghere.org.uk

8 "Minute by the Hon'ble T. B. Macaulay, dated the 2nd February 1835", http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00generallinks/macaulay/txt_minute_education_1835.html

and technology continue to be highly derivative. One of the major Macaulayan arguments to introduce English education in India was promotion of a knowledge of the Western sciences among the inhabitants of the British territories. However,

> "[w]hat followed was a class not of physicists, chemists and mathematicians … but a sect of grotesque apes who took to European classical learning, British history and writing in the English language. … they fell headlong for the specious western mores and manners. Instead of imbibing Faraday and Newton they crammed the Bible and Milton. Several of them embraced Christianity or sailed to the west, turning their backs on their own people."[9]

Macaulay's project is a successful design for the complete enslavement of the subject's mind. One can see its full expression in Nobinchunder Dass's essay[10] from which Gauri Viswanathan quotes a long passage to prove her point. She writes:

> "In Nobinchunder Dass, Adam Smith's impartial spectator has found a congenial home: 'The English are to us what the Romans were to the English.' In this one sentence are redeemed years of lessons in history leading to this culminating moment of affirmation, the endorsement of the Macaulayan dream."[11]

In continuing the modern educations we are merely reproducing more Dasses. Despite several efforts in the form of various Education Commissions[12] the

9 M. Prabha. *The Waffle of the Toffs,* New Delhi: Oxford-IBH, 2000, p. 5.

10 Here is a paragraph from the long quotation given by Gauri Viswanathan: "The English are to us what the Romans were to the English; and as the English are the children of modern times, and command more resources and power than the Romans, we derive the greater advantage. The facility afforded to communication by the use of steam has enabled the English to govern our country with great prudence and vigilance, they do not appear to be at any time at the risk of forbearing in the glorious work which they have commenced, of improving the native mind and condition, but prosecute it with honour to themselves and favour to their subjects, till they are styled the regenerators of India." (quoted by Gauri Viswanathan, *Masks of Conquest: Literary Study and British Rule in India*, New Delhi: Oxford UP, 2012, pp. 139-140.)

11 Gauri Viswanathan, *Masks of Conquest: Literary Study and British Rule in India*, New Delhi: Oxford UP, 2012, p. 140.

12 A large number of the Commissions have been appointed for various kinds of reforms in education and related issues. For example, The Sapru Committee (appointed in 1934 by UP Govt), Zakir Hussain Committee's Report (or "Wardha Scheme", 1937), Radhakrishnan Commission (1948), Mudaliar Commission (1952), Kothari Commission (1964-1966), National Policy on Education (NPE)-1986, Yashpal Report (Learning Without Burden, 1993) and National Education Policy-2020. Similarly, various Commissions on Technical Education have been formed: Sarkar Committee (1945), S. S. Bhatnagar Committee (Scientific Manpower Committee, 1947), Thacker Committee (1959), Chandrakant Committee (1971), Nayudamma Committee (1978), Rama Rao Committee (1995), Mashelkar Committee (1998), U.R. Rao Committee (2002), P Rama Rao Com-

only change that has come to Indian education since 1947 is that it has slightly tilted towards Americanisation because of the growing influence of the USA in various spheres of life. While education, especially higher education in India was Anglo-centric earlier, as a result of the new political and economic order, it is Anglo-American-centric now. Peter Ronald deSouza rightly says, "… by pushing this educational policy frame developed by the North for their own universities, our policy makers and educational bureaucrats have become accomplices in the further colonialization of our minds. The Pitroda-led National Knowledge Commission (NKC) reports are the best statement of this."[13] Even a cursory comparison of the course lists, items/ topics in the existing syllabus/course-outlines, the lists of prescribed and recommended books will prove my point. The needs of the post-colonial India have changed, the world has been transformed into a global village through internet revolution and fast means of travelling. The decolonisation of the education in India is much needed if India has to stand on its own, to assert her identity in the world, provide some sort of vision for an alternative world and also, if "*bharat ko vishguru banana hai*" (India is to be a world leader). Decolonising is to take place in respect to the ethos in thinking patterns. Education is the main long-term strategy and an effective but unsuspected vital tool to change it. The following are the four main components of an educational system through which the ethos of a society is controlled and changed: Curriculum & Courses, Research, Publications and Medium of Instruction, Examination and Writing.

Macaulay's Legacy: Changing the Ethos

One of the most pernicious consequences of colonialism was what K. C. Bhattacharya described as the "slavery of the spirit."[14] It resulted in generating a feeling of inferiority, erasing memory and cultures, introducing an alien conceptual vocabulary and instituting a hegemonic perspective from which to view the world.

mittee (2002), Knowledge Commission Report on Technical Education (2005 - 2008), Anil Kakodkar Committee (2010), Commission on Polytechnic Education such as Damodaran Committee (1970); Commissions on National Institute of Technical Teachers' Training & Research (NITTTR): Kelkar Committee (1976), Jha Committee (1978), Bhattacharya Committee (1991), P Rama Rao Committee (1995 – 1999), P.V. Indiresan Review Committee (2000).

13 Peter Ronald deSouza, "The Recolonization of the Indian Mind", RevistaCrítica de CiênciasSociais, no. 114 2017, Centro de EstudosSociais da Universidade de Coimbra, pp. 137-160. https://doi.org/10.4000/rccs.6809

14 Krishna Chandra Bhattacharya, "Swaraj in Ideas", https://multiversityindia.org › uploads › 2009/12, PDF.

It produced a shadow mind whose creativeness was eroded and which, unknown to itself, adopted an intellectual life that was marked by imitation and mimicry. Macaulay was convinced that the British (or perhaps Scottish because he himself came from that stock) White people were more intelligent than the brown Indians, particularly the Hindus. In the "Minute on Education" he, therefore, is dismissive of the Indian/ Hindu belief systems, history, physical and moral philosophy, astronomy, geography, medicine, religion and law. Macaulay's objective was far more than to "introduce progress and civilization to the Indians", an explication of the colonial project of "white man's civilizing mission". Macaulay's plan included cultural colonialisation of India as well: "The languages of Western Europe civilized Russia. I cannot doubt that they will do for the Hindoo what they have done for the tartar."[15] The covert plan of religious imperialism through education is affirmed and explicated by him openly in a private letter to his father, Zachary Macaulay, who "worked endlessly … to Christianize and improve the world"[16]. Here is an extract from the letter:

> "Our English schools are flourishing wonderfully. We find it difficult, indeed at some places impossible, to provide instruction for all who want it. At the single town of Hoogley fourteen hundred boys are learning English. The effect of this education on the Hindoos is prodigious. *No Hindoo who has received an English education ever continues to be sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy.* But many profess themselves pure Deists, and some embrace Christianity. The case with Mahometans is very different. The best-educated Mahometan often continues to be a Mahometan still. The reason is plain. *The Hindoo religion is so extravagantly absurd that it is impossible to teach a boy astronomy, geography, natural history, without completely destroying the hold which that religion has on his mind. But the Mahometan religion belongs to a better family. It has very much in common with Christianity; and even where it is most absurd, it is reasonable when compared with Hindooism.* It is my firm belief that, if our plans of education are followed up, *there will not be a single idolater among the respectable classes in Bengal thirty years hence*. And this will be effected without any efforts to proselytise, without the smallest interference with religious liberty, merely by the natural operation of knowledge and reflection. *I heartily rejoice in this prospect*... ."[17]

15 Idem

16 https://en.wikipedia.org/wiki/Zachary_Macaulay

17 Trevelyan, George Otto Sir. *The Life and Letters of Lord Macaulay*. Vol I. London: Longmans, Green, 1876, pp. 454-56, https://archive.org/details/lifelettersoflor01trevuoft (emphasis added).

If one reads the above extract in conjunction with the Minute[18] one can easily note the contradiction in Macaulay's statements on the role of the state in the matter of religion and religious conversions. His contempt and hatred of Hindus/ heathans, like that of a typical Christian bigot is quite apparent. It is no surprise, therefore, that he wished to establish British hegemony by destroying the Indians culturally, intellectually, religiously and economically. Since controlling the minds is a slow process a long-term strategy is required. Macaulay drafted "Minute on Education" to control the mental selves of the colonised. He attempts this by colonising their minds, changing their sensibility and converting them to Christianity both overtly and covertly. For controlling the physical selves, a comparatively easy process, Indian Penal Code[19] was drafted by him. Macaulay's approach was supported by other colonialists as well. One such support can be seen in a minute issued in the Bombay presidency, in which J. Farish spelled out the strategies to control the colonies without any mention of Macaulay:

> "We are here in India, in a very extraordinary position -- a small band of aliens totally unconnected by color, religion, feelings, manners, or any one single ties -- have established their despotic rule over a vast people, whose affections must be with their Native Princes, all whose prejudices are arrayed against their conquerors. This supremacy can only be maintained by arms, or by opinion. The Natives must either be kept down by a sense of our power, or they must willingly submit form a conviction that we are more wise, more just, more humane, and more anxious to improve their condition than other ruler they could possibly have. If well directed, the progress of Education would undoubtedly increase our moral hold over India, but, by leading the Natives to a consciousness of their own strength, it will as surely weaken our physical means of keeping them in subjection." Poll. Dept., Vol. 20/795, 1837-39, pp187-91 (Bombay Records)"[20] (237).

18 "Assuredly it is the duty of the British Government in India to be not only tolerant but neutral on all religious questions … .We are to teach false history, false astronomy, false medicine, because we find them in company with a false religion. We abstain, and I trust shall always abstain, from giving any public encouragement to those who are engaged in the work of converting the natives to Christianity." (T B Macaulay, "Minute on Education", *Macaulay Prose and Poetry*. Young, G M (Ed.). London: Rupert Hart Davis Soho Square, 1861, pp. 719-730.)

19 The first final draft of the Indian Penal Code was submitted to the Governor-General of India in Council in 1837.

20 Quoted in B. K. Boman-Behram, *Educational Controversies of India: The Cultural Conquest of India under British Imperialism*, Bombay: D. B. Taraporevala, n.d., pp. 236-237. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.234206/page/n3/mode/2up

The outcome, the modern-day education system, is flourishing in modern India, despite several education commissions. It is quite unfortunate that the Govt of India has not only continued with both the instruments of colonial control almost without any amendments but has taken them to the far and nook of the country and has bestowed high prestige to them as well. The Govt of India has also continued with the overt plans of Macaulay by accepting and adopting his policy of religious neutrality in the educational institutions. However, it is quite unfortunate that the covert plan was not only accepted by the government but also was being propagated blatantly. The intellectuals, teachers, political leaders and bureaucracy have just remained silent spectators and have not attempted to unravel the efforts to Christianize the whole country through education (medical education included).

Let me cite the example of food to illustrate my point. Food is classified as Sattvic (pure food), Rajasic (stimulating food) and Tamasic (impure and rotten food) in the *Bhagavad-Gita* and other Indian texts on Yoga and Ayurveda. Each category has an effect on the physical and mental well-being of the consumer. Sattvic food is the purest form of food. They are aimed at calming the mind, rejuvenating the body, and inspiring the heart. Rajasic food is said to be stimulating and contributes to physical and emotional stress. Too much of such a diet can push us towards an imbalanced life. As per the Ayurveda, consumption of Tamasic food leads to the destruction of the mind and body alike. They are said to harm humans in all possible ways. The quality of food is also judged by the means of earning. For example, if the means of earning food are tamasic, the food will also turn tamasic. By classifying food in this manner, we not only encouraged individuals to follow a particular *dharmic* way of life, free of exploitation and cheating but also maintained order in the society. This system of classification of food is more appealing to mind than to the senses. One may also note that so far, no machines to identify food on this criterion have been developed.

In the Western sciences food has been classified as protein, carbohydrates, vitamins, fats, minerals, fibre and water. Machines have been developed to identify the food items but this is certainly not a better way of classifying food. While Indian way appears to be final the Western system seems to be changing its stand every now and then. For example, earlier no difference was made between animal and plant proteins but now it is made. So, the Western science is moving towards taking the source of the product also into consideration. Similarly, earlier the Western science

did not make any difference between animal fat and plant fat, now it is made. Indian Ayurvedic science makes a difference among fats obtained from different animals as well; and different kinds of characteristics are attributed to them though perhaps this cannot be proved on the basis of existing machines.

Let me analyse some of the "scientific statements" in Indian text-books about protein:

> "Protein is a large category of molecules. They give structure and support to body cells and are necessary for immune function, movement, chemical reactions, hormone synthesis, and more. They are all made up of tiny building blocks called amino acids, nine of which are essential to be consumed. A body needs them but cannot make them on its own, so one needs to get them in one's diet. The following are the sources of protein: meat, poultry, fish, eggs, dairy foods, fruits, vegetables, grains, nuts, and seeds. The essential amino acids can be found in many different animal proteins such as beef, poultry and eggs."

According to the above information, it is absolutely must for everyone to be a non-vegetarian to remain healthy though the history of civilization tells us otherwise. Again, the "scientific book" indirectly says that the protein/ acids obtained from halal, non-halal and haram meats is the same. So, in their effort to propagate the "Western scientific attitudes", the Indian text-books/ authors are actually promoting a value in eating habits. They are prompting the readers to turn non-vegetarian in the name of teaching science irrespective of their faith and ethos. Even a Jain student, who is taught at home to shun violence in any form is taught at the schools to eat non-vegetarian meals.

If one examines the above information critically, one realises that there is nothing scientific in the above description of proteins. That everything consists of molecules and atoms is common knowledge. Only proteins and amino acids do not constitute a cell -- no artificial cells have been created simply by collecting certain proteins and acids till date. There is no unanimity over the number nine ("Nine of these") as well. Are we giving correct and true information to the unsuspecting student in the name of scientific education? However, not giving this false information in the books makes the formerly colonised feel guilty, unscientific and uneducated. The colonised feel inferior and ignorant without this false information as they do not believe the classification of food in their own culture as respectable, sophisticated, enlightened and civilized – they gain confidence and self-respect by learning this false information.

If everybody turns a non-vegetarian, violence, cruelty and intolerance will in-

crease in the world on its own. If violence increases, the sale of arms will go up and an arms race will be quite inevitable. Thus, a chain reaction starts by introducing a wrong concept in the name of science and one the ethos of a society gets changed in a very subtle manner. The earlier we understand it, the better it will be for the humanity and the world. It will be quite appropriate to quote Ramdhari Singh Dinkar's following lines for those who have an indifferent attitude: "The struggle is still on, the huntsman alone is not the partaker of the sin, time will also judge the transgressions of those who remained indifferent."[21] (My translation.)

The Colonial Legacy: Curriculum & Courses

No university has made an effort to collect all the Indian articles, speeches, pamphlets, newspaper-issues and books that had been banned /proscribed/ censored/ censured/ by the British imperialists in India and prescribe them in the respective syllabi for studies. This apathy speaks volumes about our attitudes for the former colonial powers and the intellectual concerns of the Indian elite scholars. A cursory glance at the prescribed books and recommended books in the curricula of the UG/ PG programmes in the Universities will make one realise that almost all the books are by either British or American authors or from the Indian authors who parrot the Western ideas and arguments. This academic racism is based on the presumption that only British and American universities are the knowledge producing centres and the scholars located there are the avatars of intelligence. In the discipline of English studies, for example, there are hardly any books from the countries where is English is taught as a second/ foreign language or from the Indian authors who present an Indian perspective/ point of view. This ignoring of a vast reservoir of the knowledge and experiences of the similarly situated people is to our detriment. The curricula developed by Curriculum Development Centre[22] are no different. Their study also highlights the fact that an undue emphasis on teaching English Literature is there in the curricula. This is a sort of colonial hangover which is justified unabashedly by many intellectuals located in India and abroad. Let me examine the case of curriculum in the discipline of law as a case study.

21 Ramdhari Singh Dinkar, 'समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,/ जो तटस्थ है, समय लिखेगा उनके भी अपराध', समर शेष है', https://bharatdiscovery.org/india/समर-शेष-है--रामधारी-सिंह-दिनकर

22 Three reports developed by Curriculum Development Centre in English, in 1989, 2001 and 2019 (UGC LOCF) are available.

In order to perpetuate his rule a coloniser needs to control the system of justice for immediate gains and education for long term advantages. As a protégé of the colonial powers Macaulay chalked out very clever plans to control the colonised's mental as well as physical beings. In order to prove himself "more just" the coloniser rejects the old sets of rules and rolls out the new ones. When the East India Company started ruling Bengal, they used to dispense justice to the Hindus mainly on the basis of *Mitākṣarā*[23]; when they moved northwards other prevailing rules of the land were adopted by them[24]; this is to say that they did not insist on dispensing justice according to English jurisprudence in the first phase of their rule. As a short-term measure to strengthen their position the Coloniser needs to control the "physical beings" of the Colonised; to achieve this objective the existing rules have to be replaced by a new set. Macaulay, therefore, drafted the "Indian Penal Code (IPC)"[25] to replace the existing ones. IPC is based on a simplified codification of the law of England at the time; some of its elements were also derived from the Napoleonic Code and Edward Livingston's Louisiana Civil Code of 1825; the existing Indian laws rooted in the soil were not at all taken into consideration though a very rich tradition of law, lawyers, principles and judgments existed in India as has also been demonstrated by Ludo Rocher[26].

23 Rocher, Ludo. *Studies in Hindu Law and Dharmaśāstra, Edited with an Introduction by Donald R. Davis, Jr*. London: Anthem Press, 2012, pp. 119-128.

24 For example, Sir John Edge applied the rule of construction of the Mimansa of Jaimini to the text of Vasistha while delivering the judgment in the case of Beni Prasad Vs. Hardai Bibi (ILR 1892 (14) Allahabad 67 (FB), www.casemine.com/judgement/in/5ac5e3254a93261a1a73902f). Some of the other cases where judgments were pronounced by the English judges using Indian authorities in jurisprudence are: KalgavdaTavanappa Patil v SomappaTamangavda Patil (ILR 1908 (33) Bom 669, https://indiankanoon.org/doc/682888/), V SubramaniaAyyar v. Rathavelu Chetty (ILR 1917 (41) Ma 44 (FB), https://indiankanoon.org/doc/631973/) and Narayan PundlikValanju v. Laxman DajiSirekar (ILR 1927(51) Bom784, https://indiankanoon.org/doc/494653/).

25 The code was drafted on the recommendations of first law commission of India established in 1834 under the Charter Act of 1833 under the chairmanship of Thomas Babington Macaulay. The first final draft of the Indian Penal Code was submitted to the Governor-General of India in Council in 1837. It came into force in British India during the early British Raj period in 1862. However, it did not apply automatically in the Princely states, which had their own courts and legal systems until the 1940s.The Code was also adopted by the British colonial authorities in Colonial Burma, Ceylon (modern Sri Lanka), the Straits Settlements (now part of Malaysia), Singapore and Brunei, and remains the basis of the criminal codes in those countries.

26 Rocher, Ludo. "Lawyers in Classical Hindu Law", Law & Society Review , Vol. 3, No. 2/3 (Nov.,

However, even in the post-independent India we have neither abandoned Macaulay's creation, IPC, nor have disregarded colonial practices administering justice – a fact feebly lamented even by the Chief Justice of India N V Ramana who proclaimed, "Indianisation of the country's legal system is the need of the hour and it is crucial to make the justice delivery system more accessible and effective."[27] Supreme Court Justice S. Abdul Nazeer has suggested a specific way to Indianize the system: "...the surer yet arduous way to free administration of justice in India from the colonial psyche is to teach law students about ancient yet advanced legal jurisprudence [and adoption of] "the legal norms developed by great scholars like Manu, Kautilya, Brihaspati and others."[28] No wonder, when the Supreme Court Justice S Abdul Nazeer gives a spirited call to be "back to the roots" it is taken as a surprise in certain sections of the Indian press and society. It will not be out of place to point out that Justice Markandey Katju has highlighted the limitations of the pure western jurisprudence in several of his judgments (in Allahabad High Court and Supreme Court of India)[29] wherein he used *Mimamsa*[30] principles of interpretation,

1968 - Feb., 1969), pp. 383-402. https://www.jstor.org/stable/3053008. Also please see Studies in Hindu Law and Dharmaśāstra, Op. Cit.

27 "Indianisation of our legal system is need of the hour: Chief Justice of India", PTI, The Times of India, Sep 18, 2021, http://timesofindia.indiatimes.com/articleshow/86316597.cms?utm_source=-contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst

28 Mahapatra, Dhananjay, "Must teach ancient Indian jurisprudence, throw out colonial law system: Nazeer" https://timesofindia.indiatimes.com/india/must-teach-ancient-indian-jurisprudence-throw-out-colonial-law-system-nazeer/articleshow/88512602.cms

29 Some of these judgements are available in *K. L. Sarkar's Mimansa Rules of Interpretation: Tagore Law Lectures-1905, Ed. Justice Markandey Katju*, New Delhi: Thomson Reuters, 4th edition, 2013, pp. 325-436.

30 Justice Markandey Katju holds that Mimansa Principles are better than Maxwellian principles: "The Mimansa Principles of Interpretation, as laid down by Jaimini around the 5th century B.C. in his sutras and as explained by Sabar, Kumarila Bhatta, Prabhakar, Mandan Mishra, Shalignath, Parthasarathy Mishra, Apadeva, Shree Bhat Shankar, etc. were regularly used by our renowned jurists like Vijneshwara (author of *Mitakshara*), Jimutvahana (author of *Dayabhaga*), Nanda Pandit (author of *DattakaMimansa*), etc. whenever there they found any conflict between the various Smritis, e.g., *Manusmriti* and *Yajnavalkya Smriti*, or ambiguity, ellipse or absurdity in any Smriti. Thus, the Mimansa principles were our traditional system of interpretation of legal texts. Although originally they were created for interpreting religious texts pertaining to the Yagya (sacrifice), they were so rational and logical that gradually they came to be utilized in law, philosophy, grammar, etc., that is, they became of universal application. … The Mimansa principles were regularly used by our great jurists for interpreting legal texts (see also in this connection P.V. Kane's' *History*

the native wisdom. Justice Katju has also highlighted that there is no constitutional or any other legal binding to use only the Principles of Interpretation given by Maxwell, Craies, Crawford, Sutherland etc in the Indian courts. Still, almost all Indian jurists use them in their judgments/ interpretations, laments Justice Katju. It is so because the Indian universities carry on with the colonial hang-over in teaching only the Western principles and unabashedly continue ignoring our thinkers though we have a much longer[31] tradition of Interpretation. It is quite deplorable[32], that even in the post-colonial times our modern universities emulate Anglo-American tradition at the cost of pubic exchequer; it is tantamount to saying that the modern-day governments are paying for propagating the myth that the Indians have no worthwhile intellectual achievement to their credit.

of the Dharmashastra', Vol. V, Pt. II, Ch. XXIX and Ch. XXX, pp. 1282- 1351). … In Mimansa, casus omissus is known as adhyahara. The adhyahara principle permits us to add words to a legal text. However, the superiority of the Mimansa Principles over Maxwell's Principles in this respect is shown by the fact that Maxwell does not go into further detail and does not mention the sub-categories coming under the general category of casus omissus. In the Mimansa system, on the other hand, the general category of adhyahara has under it several sub-categories, e.g., anusanga, anukarsha, vakyashesha, etc." (Dr Rajbir Singh Dalal v. Chaudhari Devi Lal University, Sirsa &Anr., Civil Appeal No. 4908 of 2008, August 2008, https://indiankanoon.org/doc/1268797/)

31 For example, the first edition of Maxwell's Book on Interpretation was published in 1875 whereas Jaimini's Sutras have been in existence since about fifth century BC, even if we ignore other eight authorities, whose works have been lost, but are quoted by Jaimini in his treatise.

32 The fact has also been deplored by Justice MarkandeyKatju: "It is deeply regrettable that in our Courts of law lawyers quote Maxwell and Craies but nobody refers to the Mimansa Principles of interpretation. Most lawyers would not have even heard of their existence. Today our so-called educated people are largely ignorant about the great intellectual achievements of our ancestors and the intellectual treasury which they have bequeathed us. The Mimansa Principles of interpretation is part of that great intellectual treasury, but … there has been almost no utilization of these principles even in our own country. Many of the Mimansa Principles are rational and scientific and can be utilized in the legal field." https://indiankanoon.org/doc/1268797/, https://indiankanoon.org/doc/1557228/ . This sentiment has been repeated in several of his articles, speeches and judgements with minor variation in language, some of which can be located at: https://www.ebc-india.com/lawyer/articles/93v1a4.htm, https://indiankanoon.org/doc/461003/, https://indiankanoon.org/doc/1313824/, https://indiankanoon.org/doc/295313/, https://indiankanoon.org/doc/1597825/, https://indiankanoon.org/doc/1223233/, https://www.casemine.com/judgement/in/56e1187a607dba3896616ffc,https://www.aironline.in/legal-articles/The+Mimansa+Principles+of+Interpretation, https://www.aironline.in/legal-articles/The+Mimansa+Principles+of+Interpretation-II, https://www.outlookindia.com/website/story/from-the-ancient-to-the-modern/264730 and etc.)

NEP-2020 takes care of this issue and in a major departure from the earlier policies has clearly mandated to concentrate on the Indian and local contexts and ethos in its approach:

> "4.29. All curriculum and pedagogy, from the foundational stage onwards, will be redesigned to be strongly rooted in the Indian and local context and ethos in terms of culture, traditions, heritage, customs, language, philosophy, geography, ancient and contemporary knowledge, societal and scientific needs, indigenous and traditional ways of learning etc. – in order to ensure that education is maximally relatable, relevant, interesting, and effective for our students. Stories, arts, games, sports, examples, problems, etc. will be chosen as much as possible to be rooted in the Indian and local geographic context. Ideas, abstractions, and creativity will indeed best flourish when learning is thus rooted."[33]

The ball, therefore, is now in the court of the Indian intellectuals and the universities. Let us see how they decolonise the curriculum in their respective disciplines.

Medium of Instruction: The Colonial Hangover

Brian Houghton Hodgson unequivocally writes, "Those whom Rome subdued, became twice subject by their slavish acceptance of her language; and those who subdued Rome were only saved from vassalage to her learning by the free genius of their political institutions."[34] But, a large number of Indian academicians claim that the medium of instruction in this country should be English if quality education is to be provided. Their opinion is based not only on the colonial hang-over that continues in a very large way in this country but also is backed up by the resources that we already have in our libraries in English. Quality of anything is to be judged vis-à-vis some parameters; the quality of our graduates has already been hinted at in the opening paragraph of this paper. The library resources in English have simply left us copy-cats and have rendered our education largely derivative.

A large number of social elites also argue that teaching in English is necessitated because English is a lingua franca in India and is patronised by the Government of India

33 *National Education Policy 2020*, Ministry of Human Resource Development, Government of India. n.p., n.d. Henceforth, this document has been cited and referred to as NEP or NEP 2020.

34 Brian Houghton Hodgson. *Preeminence of the Vernaculars: Or the Anglicists Answered: Being FourLetters on the Education of the People of India*, n.p.: Serampore Press, 1847. p. 35.

as an Official language[35]. As regards, English Language being the official language, the Constitution does not envisage perpetuating its status for ever as the provision has been inserted to meet a particular contingency. Again, if English is the "lingua franca" of the Indian people or of the anglicised Indian academicians needs to be closely scrutinised. That English is the "lingua franca" of the people is just a presumption, not backed up by any authentic data. According to 2011 census just 0.02 % of total Indian population (Males: 1,29,115, Females:1,30,563, Total 2,59,678) (censusindia) recognized English as their mother-tongue and only 10.6% of total population use it as second and third language (Wikipedia, censusindia); while 8,27,17,239 persons (6.835% of the total Indian population) use it as their second language, 4,55,62,173 Indians (3.765% of the total Indian population) use it as their third language. In the census its decadal (2001-2011) percentage growth has been reported to be 14.67, much less in comparison of several other languages. In a nationally representative sample survey conducted by Lok Foundation and Oxford University, administered by the Centre for Monitoring Indian Economy in 2019, "just 6% of respondents said they could speak English, less that what the 2011 census showed." (livemint) If about 90-95% population of this huge multi-lingual and multicultural country do not know/ use English is it justifiable to describe English language as lingua franca of India? Again, it has been reported in Lok Foundation survey that "English speakers are richer, more educated and more likely to be upper caste." This minority group also holds a considerable economic power and assumes the role of opinion and decision makers in this country. This group also suffers from colonial hangover and loses no opportunity to continue and spread it. Can this minority group be allowed to continue social ostracization of the majority by holding power against the egalitarian norms? Can this socially elite[36] group of people be the sole representative of India against all

35 Constitution of India, Part XVII, Clause 343 (2). Ministry of Law and Justice, Government of India, 2020. It may also be noted that in only 54 countries English is both a de jure and a de facto official language. It is a de facto official language in Australia, New Zealand, the UK and the USA. https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_countries_and_territories_where_English_is_an_official_language.

36 Vilfredo Pareto discusses the existence of two types of elites: Governing elites and Non-governing elites. He postulates that "in actual societies, elites are those most adept at using the two modes of political rule, force and persuasion, and who usually enjoy important advantages such as inherited wealth and family connections." Gaetano Mosca says elites are an organized minority and that the masses are an unorganized majority. He divides the world into two groups: Political class and Non-Political class. Mosca holds that elites have intellectual, moral, and material superiority that

democratic norms?

At this point, let me also examine some of the presumptions in the *Minute*. In his Minute, Macaulay writes: "… it is possible to make natives of this country thoroughly good English scholars, and that to this end our efforts ought to be directed."[37] Elsewhere he writes, "I hope that, twenty years hence, there will be hundreds, nay thousands, of natives familiar with the best models of composition, and well acquainted with Western science. Among them some persons will be found who will have the inclination and the ability to exhibit European knowledge in the vernacular dialects."[38] As a student of English Studies in India, I have been looking for those "good" Indian scholars who have been accepted as authorities in English Literature – so far I have found none. I have also been looking for those scholars who are "well acquainted with Western science" and have displayed their "ability to exhibit European knowledge in the vernacular dialects". Again, I find none. If my search is some evidence, Macaulay's both the presumptions have proved to be false. As a matter of fact, the Indian academicians simply toe the line of Macaulay as they do not wish to come out of their comfort zones. If their arguments had been valid, English courses in India would have seen the presence of Indian scholars in various syllabi.

An Indian student generally spends unusually larger time in learning English in India than he spends in learning a foreign language in some other country. For example, in the countries like China, France, Germany, Russia and Japan etc. (where English is not the medium of instruction) the foreign scholars (who go there for higher studies) are taught the language (of the respective country) in one year with such proficiency that they are not only able to complete their higher studies but also write doctoral dissertation and publish papers in that language in the journals of international repute. On the contrary, in India despite teaching English literature (the most common way to teach English Language) for more than sixteen years the students fumble for words to express themselves, what to say of writing and publishing a research paper in correct English. If my testimony on the worthlessness of the approach/ course is any

is highly esteemed and influential. John Higley, "Elite Theory and Elites", *Handbook of Politics: State and Society in Global Perspective*, Kevin T. Leicht, J. Craig Jenkins (eds.), New York: Springer-Verlag, 2010, pp. 160-176.

37 Minute by the Hon'ble T. B. Macaulay, dated the 2nd February 1835. http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00generallinks/macaulay/txt_minute_education_1835.html

38 The Life & Letters of Lord Macaulay, Vol I, p. 411.

good, here it goes:

> I, along with some other senior teachers, was associated with the evaluation of the answer scripts in a recently held competitive examination for post of lecturers in Government intermediate colleges in my state. This examination was open to the Indians holding at least MA (English) degree; about 1500 candidates appeared in this examination after passing a screening test. Only a few answer scripts were written in tolerably correct English; the answers largely gave no clue of the examinees' comprehension of the questions and the instructions -- neither in the literature section nor in the grammar section. Having examined such scripts, I felt I had wasted forty years of my life just for earning wages. My experience of interviewing candidates for the post of Assistant Professor (English) has rarely been better.

The continuance of English as a medium of instruction is to continue Macaulay's plans (in the form of his *Minute on Education*) of linguistic imperialism. Macaulay had both overt and covert designs. The *Minute* were not a product of gentility and benignity but a work of hostility. The overt plan was simply to stop grants for Oriental education and to extend financial support to English education with a view to discourage the learning of Arabic and Sanskrit, introduce English as a medium of instruction and to create "a class of persons, Indian in blood and colour, but English in taste, in opinions, in morals and in intellect"[39] who could in their turn develop the tools to transmit Western learning in the vernacular languages of India.

However, there is no doubt that Macaulay was preparing a ground for the spread of the Western ideas in this country, through his percolation theory, by trying to prepare some local persons who will act as his agents but will work in vernacular languages. Even if Macaulay's intentions are taken on their face value, he has been proved wrong by the outcome of his policy. The impact of the new education system, in contrast to the vernacular schools, has not been desirable in terms of the language proficiency though it was successful in achieving its goal in terms of changing the character[40] of those who undertook this education. Further, on the basis of a report

39 "Minute by the Hon'ble T. B. Macaulay, dated the 2nd February 1835", http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00generallinks/macaulay/txt_minute_education_1835.html .

40 Some characteristics of the people of the Indian subcontinent: ".... the prickly sense of insecurity, the obsession with conspiracies, the desire to succeed, the lack of faith in the leadership (everyone is dwarfed at the side of Gandhi or Jinnah), the aggressive loyalty to a cause and by implication the need to assert a separate identity." (Akbar Ahmed. Jinnah, *Pakistan and Islamic Identity: The*

published in the *Calcutta Review* (1883) the author of *Indo-Anglian Literature*[41] notes the following impact of English education on the Indians: a) "it has made them more litigious" b) "it has made them less contended with their lot in life and less willing to work with their hands." Almost something similar has been expressed by Gandhi in *Hind Swaraj* and elsewhere.

Medium of Instruction: NEP 2020

Adherence to the constitutional provisions, fulfilling the linguistic aspirations of the people, regions, and the Union, and promotion of multilingualism[42] may be described as the prime statement of the language policy in NEP 2020. No less than eighteen paragraphs have been devoted to the above issues in the document. The issues of imparting instructions in one's mother tongue, developing an Indian language and learning a foreign language have quite seriously been taken up in NEP 2020. The mother tongue/ home language has to the medium of instruction preferably up to 8th standard. The mother tongue/local language will be used as a medium of instruction even in Higher Educational Institutes (22.10) and accordingly, books at all levels have to be prepared wherever they do not exist. It has also been suggested that bilingual method at all levels should be adopted wherever there is no facility to teach in home language. It has very clearly been mentioned that "a language does not need to be the medium of instruction for it to be taught and learned well." (4.11) Incentives are also being planned for using Indian languages: "Private HEIs too will be encouraged and incentivized to use Indian languages as medium of instruction and/or offer bilingual programmes." (22.10) The policy makers have also noted that this will require a large number of teachers in regional languages. It has, therefore, been suggested a recruitment of teachers "in all regional languages around the country, and, in particular, for all

Search for Saladin, Routledge, 1997, p. 270)

41 *Indo-Anglian Literature*. Calcutta: Thacker, Spink and Co., 1883. PDF. The author/compiler of this book does not identify himself simply as "B. A." though this book has been attributed to Sir Edward Charles Buck in the Bibliographic information on the site <worldcat.org> "Edward Charles Buck, Sir". Likewise, "Buck, Edward Charles, b. 1838" has been mentioned as the main author of the book in the Bibliographic information of Hathi Trust Digital Library <hathitrust.org > However, there is an additional note also on the card: "By Sir Edward Buck, secretary to the Government of India." [sic] -- Halkett& Laing." In the recent edition of the book issued by Palala Press (May 21, 2016) also the authorship has been attributed to Sir Edward Charles Buck (amazon.com).

42 "Multilingualism is recognized by the General Assembly [of the United Nations] as a core value of the Organization." https://www.un.org/sg/en/multilingualism/index.shtml

languages mentioned in the Eighth Schedule of the Constitution of India" (4.12) be made by the Central and state governments. This step will not only strengthen the local languages and fulfil the local and regional aspirations but will provide jobs locally so that the pressure on the cities due to migration will also be lessened. With a view to "to promote multilingualism" the earlier policy of three-language formula has been continued in this policy too, with the minor change of providing "a greater flexibility" and the assurance that "no language will be imposed on any State." (4.13) The shift from English to the regional languages may not be that quick and easy. Therefore, it has been proposed that "high-quality bilingual textbooks and teaching-learning materials for science and mathematics [be prepared], so that students are enabled to think and speak about the two subjects both in their home language/mother tongue and in English." (4.14) There is a paradigm shift from Macaulay's approach in matter of language policy. Macaulay considered Indian languages to be very poor in content and quality and he spared no opportunity to demean them. He believed that the Indian languages were very poor in scientific vocabulary for him and "a single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia" (Minute). For him, therefore, "encouraging [their] study … would be downright spoliation [of the grant]." In contrast to this, NEP 2020 describes "India's languages are among the richest, most scientific, most beautiful, and most expressive in the world, with a huge body of ancient as well as modern literature (both prose and poetry), film, and music written in these languages that help form India's national identity and wealth." (4.15) While Macaulay was trying to create spineless intellectuals who had no self-respect and no national pride, the persons who were to be "Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect", NEP 2020 is aiming to create proud Indians full of confidence and trust in their capabilities, values, culture and the nation.

Indian languages are largely phonetic languages; most of them have their own scripts which are systematically arranged. Devanagari alphabet (which has been adopted for scheduled languages like Bodo, Hindi, Konkani, Maithili, Marathi, Nepali, Sanskrit and Sindhi and many other unscheduled languages), for example, is based on phonetic principles that consider both the manner and place of articulation of the consonants and vowels they represent. The consonants in it have been classified and arranged on the basis of Manner of articulation: *sparśa* (Plosive), *anunāsika* (Nasal), *antastha* (Approximant), *ūṣman/ saṃgharṣī* (Fricative), Voicing: *alpaprāṇa*

(voiceless), *mahāprāṇa* (voiced), Place of articulation: *kaṇṭhya* (Guttural), *tālavya* (Palatal), *mūrdhanya* (Retroflex), *dantya* (Dental), *oṣṭhya* (Labial). NEP 2020 rightly makes an effort to impress upon the "...students … the remarkable unity of most of the major Indian languages, starting with their common phonetic and scientifically-arranged alphabets and scripts, their common grammatical structures, their origins and sources of vocabularies from Sanskrit and other classical languages, as well as their rich inter-influences and differences." (4. 16) This will be a much-needed effort to impress upon the students "unity within diversity"[43] in a very scientific way. Besides, they will learn about linguistic diversity, language universals, and finding an order in the face of the diversity of human languages.

Europe is said to have come out of the Dark Ages because of the revival of classical learning during the Renaissance period. However, in India the paradigm is reverted by the colonial scholars; here it is the introduction of English that is described as ushering in of Renaissance. A country that stands on borrowed ideas and borrowed language loses its identity without much fuss. One's identity comes from one's past. Sanskrit, the classical language, was a lingua franca in ancient and medieval times in the entire South Asia. It also became the language of religion and culture with the advent of Buddhism in Southeast Asia, East Asia and Central Asia. Sanskrit also affected the languages of South Asia, Southeast Asia and East Asia, especially in their formal and learned vocabularies. A disconnect with Sanskrit is losing all connections with South East Asia. Again, Sanskrit is the only language that has been analysed so precisely that it is the only human language fit for computing techniques[44]. Therefore, NEP 2020 has rightly focussed on the teaching of Sanskrit at "all levels of school and higher education". There is a word about its teaching in a modern way: "It will be taught in ways that are interesting and experiential as well as contemporarily relevant, including through the use of Sanskrit Knowledge

43 "Though outwardly there was diversity and infinite variety among our people, everywhere there was that tremendous impress of oneness, which had held all of us together for ages past, whatever political fate or misfortune had befallen us." Jawaharlal Nehru, "The Search for India", *The Discovery of India*, Delhi: Oxford UP, 1985 [1946], p. 59.

44 In his article Rick Briggs argues about Natural languages being the best option to be converted into the computing program for robotic control and Artificial Intelligence technology. The research focuses on Sanskrit among the pool of many human languages, explaining that it is one of the most suitable ones for computing techniques. Briggs, R. (1985). "Knowledge Representation in Sanskrit and Artificial Intelligence". *AI Magazine*, 6(1), 32. https://doi.org/10.1609/aimag.v6i1.466.

Systems, and in particular through phonetics and pronunciation." (4.17) Keeping in view the diversity in Indian languages, other classical languages and literatures of India, including Tamil, Telugu, Kannada, Malayalam, Odia, Pali, Persian, and Prakrit, will also be widely available in schools as options for students. … Similar efforts will be made for all Indian languages having rich oral and written literatures, cultural traditions, and knowledge." (4.18) Since the project is likely to involve huge costs, "experiential and innovative approaches, including the integration of technology" will be revoked. At the international level, the emphasis will not be only on English but other international languages like Korean, Japanese, Thai, French, German, Spanish, Portuguese, and Russian as well, which "will … be offered at the secondary level." (4.20) Latest technology will be used and the methodology will involve "gamification and apps, by weaving in the cultural aspects of the languages." (4.21) NEP also takes care of the people with hearing-disability. It is perhaps for the first time that India will be taking steps to standardise Indian Sign Language (ISL) and develop National and State curriculum materials, for use by students with hearing impairment. (4.22)

NEP 2020 has also taken care of the tribal and endangered languages through the use of "[t]echnology and crowdsourcing, with extensive participation of the people". (22.17) It is proposed to start new Academies for all the languages in the Eighth Schedule of the Constitution of India with the specific task of developing "accurate vocabulary for the latest concepts, and to release the latest dictionaries on a regular basis." (22.18) To my mind this task should be given to the existing language Departments as all over India, PG language departments are there at every district headquarter. They should reorient and strengthen themselves to document the language "associated arts and culture" (22.19) of their location besides participating in the process of developing vocabulary and dictionaries. NEP 2020 suggests making use of technology, "web-based platform/portal/wiki" etc and doling out more scholarships "for people of all ages to study Indian Languages, Arts, and Culture with local masters and/or within the higher education system" (20.20). In this way, it is seen that NEP 2020 has taken care of preserving and maintaining the Indian multilingual environment and the needs of developing and enhancing the soft-power in all Indian languages.

EDUCATION: VARIOUS STAKEHODERS

The general charge against modern education in India is that it revolves around the outdated theoretical syllabus and too many definitions; our teaching is more of

rote learning rather than providing skills and practical knowledge and understanding; it lacks industrial/ agricultural/ economic/ social collaboration and doesn't encourage logical and inquisitive thinking. One may easily pass the examination by cramming the answers without any understanding of the materials and comprehension of the information in question. The students are poor in communication skills: both in spoken and written language; they are unable to draft a simple business letter. Many colleges/ universities have pathetic quality of infrastructure, poor library facilities and have poor teaching standards. Low student-teacher ratio, indiscipline among students and bunking the classes are other related issues. Our institutions award degrees/ certificates by not using the dictum of Aristotle: "It is the mark of an educated mind to be able to entertain a thought without accepting it" as in the examinations the creativity of the students is not tested; rather their mugging-up quality is tested. One should realize that getting education and obtaining degrees may not be synonymous. We should also not forget that today's education is the net result of the recommendations by various commissions headed by the best minds of the times in pre/post-independent India. Still, something seems to have slipped from their sight and thought. What ails our education is a question that agitates so many minds. In order to address the issues that emerge from the above, a relook at the stakeholders and the areas of intersection is necessary. There are four stakeholders to my mind: Teachers, Learners, Parents and Society and the areas of their intersection are: Subject matter/ teaching materials, Teaching method, Examination, and Funding of education. I, therefore, propose to discuss these issues with reference to NEP 2020 in the light of Indian wisdom and culture.

Teachers: The government may prescribe the qualifications but the quality of teachers has to be decided by the end users. What the government may ensure is that a teacher is not reduced to the status of a tutor. A tutor is one who prepares a student only for passing some examination while a teacher has a larger role to play — he has to play the role of a friend, philosopher and a guide in every student's life. Kalidas has used a different expression, ज्ञानपण्यमवणिज, for a tutor: "The man who shrinks from a contest, because he possesses an appointment, and patiently endures disparagement from a rival, -- the man whose learning is merely a of obtaining a livelihood, -- him they call huckster that traffics in knowledge."[45] To cite an example from our epics,

45 लब्धास्पदोऽस्माति विवादभीरोस्तिति क्षमाणस्य परेण निन्दाम्। यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिज वदन्ति।।

Dronacharya was largely functioning as a tutor (in employment of the King) while Vashishtha was a teacher (not in employment though dependent upon him for his daily needs). Dronacharya, therefore, did not intervene in the affairs of Kuru clan, like disrobing of Draupadi and going to a war but Vashishtha, on the other hand, offered his wise counsel at every moment of crisis in Ram's life. The Kaurvas and some Pandavas were unruly in the presence of Droncharya (a tutor) but Ram and his brothers were not unruly in Vashishtha's (teacher) presence. In other words, a teacher spends time in the quest of knowledge and truth but a tutor spends time in earning his wages.

"Education in the olden days was completely residential. The house of the āchārya or the teacher where the students resided and learnt was called 'āchāryakula'. When the campus grew big and the number of resident-students went beyond ten thousand, the chief āchārya was appointed as the head of the institution. It came to be known as 'kulapati'."[46] According to Nirukta[47] an acharya is one who "discerns meaning of sciences (shad darshan/ six schools of thought/ philosophy) scientifically, instils scientific temperament in one's student also, one who oneself also exhibits scientifically correct conduct"; thus, an acharya is one who, not only, advises others but also practices one's words. Almost a similar idea has been presented in *Brahma Purana*: "He who is well versed in various scriptures, is able to put it into practice as well, and enables his students to get into the practice of these is called *āchārya*."[48] According to Yama (*Veer Mitrodaya*, Part I, p. 408) the following are the fourteen characteristics of an acharya: "speaking truth, cool-headed and patient, learned/ accomplished, compassionate/ sentient, theist, devoted to studies of the *Vedas*, upright/ virtuous, accomplished in the study of the *Vedas*, ruminating on one's professional aptitude, steadfast in one's senses/ psyche/ mind, adroit, zealous, endurance, and loving all the living beings." Socrates believed that a teacher's work is to ignite a student's mind: "I cannot teach anybody anything; I can only make them think."[49] According to Swami Vivekananda, "Education is the manifestation of the perfection already in

(Mālavikāgnimitram, 1.17, Literally translated into English Prose, Tr C H Tawney, Calcutta: Thacker, Spank & Co, 1891, Tr. C H Tawney) p. 19.

46 http://www.hindupedia.com/en/Kulapati

47 आचार्यः कस्मादाचार्य आचारं ग्रहयत्याचिनोत्यर्थानाचिनोति बुद्धिमिति वा। निरुक्त-अध्याय 1 खण्ड 4

48 आचिनोति च शास्त्रार्थान् आचारे स्थापयत्यपि। स्वयम् आचरते यस्मात् तस्मादाचार्य उच्यते। (ब्रह्मपुराण पूर्वभाग 32.32)

49 Unsourced, https://en.wikiquote.org/wiki/Talk:Socrates

man."[50] Therefore, one has to think and explore within; there is no need even of a teacher: "The teacher spoils everything by thinking that he is teaching. Within man is all knowledge, and it requires only an awakening, and that much is the work of the teacher."[51] Thus, for Swamiji a teacher has a very limited role. However, one cannot envisage Swami Vivekananda without a guru like Swami Ramakrishna. NEP-2020 rightly focuses on one: "The teacher must be at the centre of the fundamental reforms in the education system" (NEP p. 4) though currently, most of the teachers are simply found working as tutors, -- completing courses, pouring facts into students' ears, and preparing them for some examination or the other.

Learners: One is impelled to gain knowledge (not a degree/ certificate) because knowledge (education) is the best kind of wealth: *"*No one can steal it, not authority can snatch, Not divided in brothers, not heavy to carry,/ As you consume or spend, it increases; as you share, it expands, knowledge/ education is the best wealth among all the wealth anyone can have*"*[52] The acquisition of knowledge also leads to earning of wealth: "Education gives humility, humility gives character, from character one gets wealth, from wealth one gets righteousness, in righteousness there is joy.*"*[53]However, every person cannot acquire knowledge. He should have the following five characteristics of a learner according to Indian wisdom: "A learner should be alert like a crow, have concentration like that of a crane and sleep like that of a dog that wakes up even at slightest of the noise. He should eat scantily to suffice his energy needs; also, he should stay away from chores of daily house hold stuff and emotional attachment.*"*[54]At another place it has been mentioned that seeking of comfort and knowledge do not go hand in hand: "Where is knowledge for those who seek a comfortable life and where is luxury for those who seek knowledge. A seeker of comfort should give up knowledge and a seeker of knowledge should give up comfort.*"*[55] It has also been mentioned that the process of learning continues the whole

50 "What We Believe In": Written to "Kidi" on March 3, 1894, from Chicago, *The Complete Works of Swami Vivekananda*,Mayavati: Advaita Ashrama, 1989, XI Edition, p. 1400, PDF.

51 *Education: Compiled from the Speeches and Writings of Swami Vivekananda*, Compiled and Edited by T. S. Avinashilingam, Sri Ramakrishna Mission Vidyalaya, P. O. Ramakrishna Vidyalaya, Coimbatore, 1957, p. 12.

52 न चोर हार्यम् न च राज हार्यम्, न भ्रातु भाज्यम् न च भारकारी। व्यये कृते वर्धते एव नित्यम्, विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम्।।

53 विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्। पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्। (हितोपदेश प्रास्ताविका : 6)

54 काक चेष्टा वको ध्यानं, श्वान निद्रा तथैव च। अल्पाहारी गृह त्यागी, विद्यार्थिनः पंच लक्षणं।।

55 सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्। सुखार्थी वा त्यजेत्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्। (महाभारत, उद्योगपर्व 40.6)

life: "A disciple gets a quarter of his knowledge from his preceptor, a quarter through his self-intellect, a quarter through his colleagues and a quarter with the passage of time by self-experience. Thus he learns from different sources and he needs to continue this process of learning throughout his life consciously."[56] From the *Mahabharta* we learn that despite being taught by the same guru/teacher the five Pandavas became skilled in wielding different weapons. The eldest PandavaYudhishthira earned his mastery in spear-fighting and chariot-racing, Bhima in wielding mace, Arjuna in archery, Nakul in sword fighting, car-warrior, and Sahadeva in fencing and axe fighting. This proves that every student learns according to his temperament and learning abilities despite being groomed in the same atmosphere and under the same economic and social conditions. The story of Dronacharya's bird eye test given to Pandavas and Kauravas proves that only a disciple who has a single mindedness can learn from a Guru and pass the given test (examination). In the *Bhagavad Gita* Lord Krishna also says: "Those who are on this path [of Buddhi Yog, or the Yog of Intellect] are resolute in purpose, and their aim is one. O beloved child of the Kurus, the intelligence of those who are irresolute is many-branched."[57] In *Avadhuta Brahmana* also we are taught the importance of single-mindedness: "Thus, when one's consciousness is completely fixed on the Absolute Truth, the Supreme Personality of Godhead, one no longer sees duality, or internal and external reality. The example is given of the arrow maker who was so absorbed in making a straight arrow that he did not even see or notice the king himself, who was passing right next to him."[58]

We are living in a social and political democratic set-up and creating and developing an egalitarian society is one of our objectives. In this context it has rightly been said in the NEP-2020 that education "is a great leveller and is the best tool for achieving economic and social mobility, inclusion, and equality." (NEP p. 4) Therefore, equal opportunities for education have to be provided "to all students, irrespective of their place of residence, … with particular focus on historically marginalized, disadvantaged, and underrepresented groups." (NEP p. 4) Having said

56 I. कालेन पदं लभते तथार्थं, ततश्च पादं गुरुयोगतश्च।
उत्साहयोगेन च पाद मृच्छेच्छास्त्रेण पादं च ततोऽभियाति।। महाभारत, उद्योगपर्व 44.16

II. आचार्यात् पादमादत्ते पादम् शिष्यः स्वमेधया। कालेन पादमादत्ते पादम् सब्रह्मचारिभिः।। (सुभाषित)

57 व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन। बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोव्यवऽसायिनाम्।। श्रीमद्भागवद्गीता 2.41

58 तदैवं अत्मनि अवरुद्ध-चित्तो, न वेदा किंचित् बहिः अंतरम् वा।
यथेषु-कारो नरपतिम् व्रजन्तं, इषु गतात्मा न ददर्श पार्श्वे।। अवधूत गीता 11.9.13

this, one also has to keep in mind that everybody, who is given admission, does not qualify to be a learner. Therefore, a distinction has to be made between a student and a learner. A learner is someone who actually cares about learning and is fully engaged in the process. A student is someone who just takes admission; he may show up in the class in a very casual manner. A leaner is not expected to be an empty vessel in which knowledge has to be poured rather he has to be aware of what is going around him/her. He has constantly to be on his toes. In other words, a successful learner will engage with the world around him by questioning everything and thinking for himself; he is driven by the quest for truth, he pushes through challenges with inner motivation and self-discipline; he trains his mind and his body, cultivates good habits and is willing to fail, and learn from his mistakes.

Subject matter/ Curriculum: The curriculum of any course is to be decided by keeping in mind the purpose of education. The purpose of education is told to be pursuit of knowledge (*Jñāna*), wisdom (*Prajñā*), and truth (*Satya*); they are largely known as *para vidya*. To Rishi Shaunak, Mahrishi Angira said: Two kinds of knowledge must be known–that is what the knowers of Brahman tell us. They are the Higher Knowledge and the lower knowledge. Of these two, the lower knowledge is the Rig-Veda, the Yagur-Veda, the Sama-Veda, the Atharva-Veda, siksha (phonetics), kalpa (rituals), vyakaranam (grammar), nirukta (etymology), chhandas (metre) and jyotis (astronomy); and the Higher Knowledge is that by which the Imperishable Brahman is attained.[59] They are held as the highest human goals in Indian philosophical thought. The aim of education in ancient India was not just the accumulation of facts as preparation for life in this world, or life beyond schooling, but for the complete realization and liberation of the self. Accordingly, world-class institutions that set the highest standards of multidisciplinary teaching and research were set up. While in ancient India the teaching/ learning of the skills (largely known as *apara vidya*) to earn one's wages was largely left to the family concerned; each family according to its varna largely chose the profession. However, things have changed in modern India. *Jati Pratha* (caste system) is looked down upon; skills of the *jati* (caste) concerned are not being imparted in the concerned family and hence the education system

59 द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।/ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।। (मुण्डकोपनिषद्, 1:1:4-5) (*Mundaka Upanishad* 1:1:4-5)

in the form of the universities/ colleges/ institutes and the teachers there have an additional responsibility of imparting skills to earn the wages. The issue has become so much important that the basic objective of the education as mentioned above has been relegated to the background. However, the fact remains that different persons have different curiosities, different aptitudes, different backgrounds and different abilities though all of us need wisdom. Strictly speaking the curriculum can only be decided by the learner and the teacher alone, keeping in view the larger principles of existence in mind; no other agency has any role in it. A large number courses catering to the different people are the need of the hour. Hence, different types of schools and colleges having different specializations are needed. Everybody cannot be sent to the same primary/convent school, Polytechnic/ Engineering College/IIT or IIMs/ Universities and even subjects. NEP 2020 takes care of this issue as well and promises "greater flexibility and … choice of subjects." (4.2, 4.9) Further, the existing "Choice Based Credit System (CBCS) will be revised for instilling innovation and flexibility. HEIs shall move to a criterion-based grading system that assesses student achievement based on the learning goals for each programme, making the system fairer and outcomes more comparable." (12.2) NEP 2020 proposes and advocates a large variety of colleges and universities. "A university [means] a multidisciplinary institution of higher learning that offers undergraduate and graduate programmes, with high quality teaching, research, and community engagement … [and that allows] … a spectrum of institutions that range from those that place equal emphasis on teaching and research i.e., Research-intensive Universities, those that place greater emphasis on teaching but still conduct significant research i.e. Teaching-intensive Universities. Meanwhile, an Autonomous degree-granting College (AC) will refer to a large multidisciplinary institution of higher learning that grants undergraduate degrees and is primarily focused on undergraduate teaching though it would not be restricted to that and it need not be restricted to that and it would generally be smaller than a typical university." (10.3) "Over a period of time, it is envisaged that every college would develop into either an Autonomous degree-granting College, or a constituent college of a university - in the latter case, it would be fully a part of the university. With appropriate accreditations, Autonomous degree-granting Colleges could evolve into Research-intensive or Teaching-intensive Universities, if they so aspire." (10.4)

Teaching methods: With the arrival of the British lecture method became quite prominent in the country. It suited the imperialist mind-set which considered

the teacher to be the sole source of knowledge in the tradition of Christian pulpit. It was also necessitated by mass-enrolments in the schools in certain pockets. Lecture method is generally used by the preachers who do not wish their lectures to be probed into by any questionings. Lecture method kills all inquisitiveness. However, all philosophers, both in the West and East, have used dialogue method to arouse the curiosity and to test the hypothesis by all types of questioning. If one to one teaching is to take place, the best method is 'Dialogue' and the worst method is 'Lecture'. NEP: "discovery-based style of learning with emphasis on the scientific method and critical thinking." (17.8) A teacher is expected to be a good facilitator beside being a good communicator. Sage Brihaspati Angiras of the 71st Sukta of the 10th Mandala of *Rigveda*[60], while determining the duty of Acharyas, says that he should adopt such a method that all students can easily grasp the subject according to their abilities. Since the Acharyas impart theoretical knowledge along with practical knowledge, they should include all the thinking, descriptive, conversational, narrative, functional, experimental and creative styles in teaching.

Examinations: What type of examination is to be conducted and for what purpose has been debated all over the world. If there are schools where no examinations are held, there are also schools which take examinations very seriously. If the examination is conducted for certification which carries no value the entire exercise becomes meaningless. Right now, in India, the situation has come to such a pass that the examination body does not value its own certificate. A student, therefore, has to appear again and again to give a test/proof of his knowledge. For example, if a student passes BA from XYZ University, he will have to write entrance examination, with the same syllabus, for taking admission in MA in the same university. Similarly, all recruitment agencies conduct their own examinations irrespective of the degrees of the aspirants. Again, in a society it is the social recognition that matters more and the government recognition has only a limited role. For example, nobody asks for a degree/ diploma when one goes to get one's cycle repaired or one goes to have street food. In the ancient times also as we learn from various stories the graduates used to go to a king for seeking a job. The king will ask them a few questions to test their knowledge before employing them. No ancient Gurukul issued the certificate of passing an examination. Simply, attending the classes was sufficient. The job is

60 अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः । आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे।। (ऋग्वेद - मण्डल 10,सूक्त 71,मन्त्र 7).

something between the employer and the employed. Even today, a large number of employers describe the university graduates as unemployable. It was during the British regime that the government necessitated that one should be a graduate from a "recognised university" for a government job. It is because of this "recognised" word that a lot of burden has come to the educational institutions. It is high time now to rethink this word. The entire energy of conducting examinations for the award of degrees/ certificates all over the country should be saved and only an examination for giving a job be conducted. For example, for a job in a bank one needs to be proficient in mathematics, computers and languages (local/ regional/national). The bank in place of looking a graduate from a recognised institute (say a graduate in Physics/Chemistry/ Zoology) should be looking for an efficient person in the skills required for the job. If needed, they may conduct a few more examinations in personality, general awareness etc. However, NEP 2020 does not envisage doing away with the examinations but it is proposed that the emphasis will shift from testing "memorization skills" to evaluating "higher-order skills, such as analysis, critical thinking, and conceptual clarity" (NEP 2020, p. 17).

Funding of education: "As per the Economic Survey presented by Union Finance Minister Nirmala Sitharaman on Monday, January 31, 2022 the expenditure on education as a percentage of GDP was: 2019-20: 2.8%, 2020-21: 3.1% (as per the revised estimate) and 2021-22: 3.1% (as per the budget estimate). The education budget 2022 has been allotted Rs 1,04,278 crore -- a 11.86% increase over from the previous year. … the education budget focused mainly on digital education, the creation of a digital university, job creation, agricultural universities, skill development of programmers, etc. The National Education Policy, 2020 (NEP) calls for public investment on education to 6% of GDP. India's education budget has never touched this number yet."[61]

Funding of an education-project is an important issue. If education is the need of the society, the society needs to fund it. If it is the need of the government, the government should fund it. In the past funding of the Gurukuls was left to the society. Many of them were not able to manage enough funds therefore most of the acharyas

61 https://www.indiatoday.in/business/budget-2022/story/union-budget-education-budget-2022-increases-by-11-86-major-areas-of-budget-allocation-education-schemes-education-plans-1907451-2022-02-01

led a life of penury. For example, it is said that the gurukul of Maharshi Bhardwaj, ten thousand students used to study but his son, Dronacharya, an accomplished scholar of the texts and arms, was unable to run the Ashram. He was unable to manage even cow-milk for his son; he therefore chose to be in the service of Dhritarashtra the Kuru king. Can funds be given without any accountability – is big question. Will funds be released for discovering truth or convenient truth – is another important question for which no absolute answer can be sought. One should not forget that the entire project of neo-colonization of mind through education is being run through various kinds fellowships, and subsidized foreign trips.

Still no education: What is interesting is that all the above in the traditional sense may be present but still no education/ (facts, wisdom and truth) may be there. Eg. in our several schools, the Government has appointed teachers, *Shiksha Mitras* have been appointed for motivating children, mid-day meals are being provided, curriculum is in place, syllabus too has been designed, the trained teachers have their methodology in place, but still no education is taking place. One of the reasons for this lies in the desire to be like others which creates various social interest groups (e.g. coaching industry, examination-copy mafia, examination notes publishing industry etc). These groups develop their caucuses at various levels which promote the short-cut methods and love of certificates and degrees.

Alternative Models in the Past:

Some alternative models have been proposed by a few thoughtful persons. For example, Rabindranath Tagore started his own institution after his thoughts. His model of education as being practised at Shanti Niketan has been discussed elsewhere. Let me talk about two philosopher activists' views here. Mahatma Gandhi has written many books on education. Amongst them are *Gandhi on Education, Nayi Taleem* (*New Education*) and *Hind Swaraj or Indian Home Rule*. According to Gandhi modern education increases our lust and greed. Gandhi believes that to live in harmony with family, environment and others is more important than to be literate. Gandhi holds that education is not synonymous with literacy. An illiterate farmer, for example, leads his life honestly. He knows how to treat his parents, his wife, and his children. He knows well about the customs of the people where he is living at present. He understands what ethics is and he knows well how to follow it despite being illiterate.

According to Mahatma Gandhi, one should acquire moral education which helps one in controlling one's senses, lust and greed because if one is able to control all these ill effects one can lead a happy life. Education is helpful only when one has brought his senses under subjection and put his/her ethics on a firm foundation. A building erected on the foundation of ethics will last long according to him. He says ancient school system was good enough, because in that system character-building was of utmost importance. Mahatma Gandhi approvingly quotes Huxley who wishes an educated man to keep his body under control, mind pure, calm and to do justice. According to Mahatma Gandhi such man only can be regarded as truly educated who follows the law of nature. Gandhi was not in a favour of modern education because he says that modern education teaches individualism in place of community living. Mahatma Gandhi says that knowledge should be given in one's own mother tongue. The books that are written in foreign language but are beneficial for us must be translated into our own languages.

Krishnamurthy in "Education and the Significance of Life" focuses on the holistic approach to education. He says that conventional education makes independent thinking very difficult. Conformity leads to mediocrity. The desire for comfort and security puts an end to spontaneity and breeds fear and this fear blocks the intelligent understanding of life. He says by innovation we should solve our problem. He says that we should have an integrated outlook and self-knowledge. According to Krishnamurthy one should acquire self-knowledge i.e. the awareness of one's own thought and feeling. Education is of very less or no significance until we have a deep integration of thought and feelings and unless we cultivate an integrated outlook on life. An individual is made up of different entities and education should bring about the integration of these entities. To bring right education, we need to understand the meaning of life and to understand life is to understand oneself and that is the beginning and end of education. Education means to see the significance of life as a whole; it is not merely acquiring knowledge or gathering and correlating facts. Education should help one to break down the national and social barriers that breed antagonism between men. But the present system of education is making one subservient, mechanical, thoughtless, incomplete, uncreative and stupefied. The purpose of education is to produce persons who are free of fear and have peace of mind; its purpose is not to produce mere scholars, technician and job hunters. NEP 2020 makes a passing reference to all these models and insists on education being rooted in Indian culture

and values.

Critical Thinking & NEP 2020

A close scrutiny of the ills discussed above leads one to conclude that it is critical thinking that a product of our education system lacks. After all the purpose of Macaulay in implementing his Minutes was not to create any creative thinkers and scientists but "a class of persons Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect … [who would] … refine the vernacular dialects of the country … with terms of science borrowed from the Western nomenclature." (columbia.edu) The purpose of education has to be to create human beings with a sense of discrimination – what we describe as *neer-ksheer vivek*: A swan is white, a crane is (also) white, (then) what is the difference between the two? when it comes to extracting milk from a mixture, a swan is a swan (a swan is able to extract milk and drink it) and a crane is a crane. (i. e. crane does not have this ability."[62] It is this sense of discrimination that gives one a sense of social responsibility: "Only a swan can discriminate between water and milk; if it stops doing it because of sloth who else will carry out this work? If even an intellectual person does not work honestly none else will be able to."[63] Therefore, Critical Thinking is the buzz word in NEP 2020. It has been conceived as the panacea for all the above ills and more. The expression "Critical Thinking" appears 10 times in National Education Policy (NEP) 2020, the document of only 60 pages:

1. "Education thus, must move towards less content, and more towards learning about **how to think critically** and solve problems, how to be creative and multidisciplinary, and how to innovate, adapt, and absorb new material in novel and changing fields." (NEP 2020, p. 3)
2. "It is based on the principle that education must develop not only cognitive capacities - both the 'foundational capacities' of literacy and numeracy and 'higher-order' cognitive capacities, such as **critical thinking** and problem solving–but also social, ethical, and emotional capacities and dispositions."

62 हंसः श्वेतो बकः श्वेतो को भेदो बकहंसयोः। नीरक्षीरविवेके तु हंसः हंसो बको बकः।।

63 नीर-क्षीर-विवेकेहंसालस्य त्वमेव तनुषे चेत्। विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः।। (भामिनी विलास, 1:13) Only a swan can discriminate between water and milk; if it stops doing it because of sloth who else will carry out this work? If even an intellectual person does not work honestly none else will be able to.

(NEP 2020, p. 4)

3. "The fundamental principles that will guide both the education system at large, as well as the individual institutions within it are: **creativity and critical thinking** to encourage logical decision-making and innovation; … ." (NEP 2020, p. 5)
4. "The Secondary Stage will comprise of four years of multidisciplinary study, building on the subject-oriented pedagogical and curricular style of the Middle Stage, but with greater depth, greater **critical thinking**, greater attention to life aspirations, and greater flexibility and student choice of subjects." (NEP 2020, p. 11)
5. "Reduce curriculum content to enhance essential learning and **critical thinking."** (NEP 2020, p. 12)
6. "Curriculum content will be reduced in each subject to its core essentials, to make space for **critical thinking** and more holistic, inquiry-based, discovery-based, discussion-based, and analysis-based learning." (NEP 2020, p. 12)
7. "Transforming Assessment for Student Development: The aim of assessment in the culture of our schooling system will shift from one that is summative and primarily tests rote memorization skills to one that is more regular and formative, is more competency-based, promotes learning and development for our students, and tests higher-order skills, such as analysis, **critical thinking,** and conceptual clarity." (NEP 2020, p. 12)
8. "11.2. Assessments of educational approaches in undergraduate education that integrate the humanities and arts with Science, Technology, Engineering and Mathematics (STEM) have consistently showed positive learning outcomes, including increased creativity and innovation, **critical thinking** and higher-order thinking capacities, problem-solving abilities, teamwork, communication skills, more in-depth learning and mastery of curricula across fields, increases in social and moral awareness, etc., besides general engagement and enjoyment of learning. Research is also improved and enhanced through a holistic and multidisciplinary education approach." (NEP 2020, p. 36)
9. "17.8. Thus, this Policy envisions a comprehensive approach to transforming the quality and quantity of research in India. This includes definitive shifts in school education to a more play and discovery- based style of learning with emphasis on the scientific method and **critical thinking**." (NEP 2020, p. 46)

10. "20.1. Preparation of professionals must involve an education in the ethic and importance of public purpose, an education in the discipline, and an education for practice. It must centrally involve **critical and interdisciplinary thinking**, discussion, debate, research, and innovation." (NEP 2020, p. 50)

It is clear from the above extracts that in the document Critical thinking has been used in reference to teaching methods, course materials, evaluation and also developing a critical sense and innovation. Since so much importance has been given to this word, it shall be in the fitness of things that we discuss the concept of critical thinking as well.

Here are some characteristics of critical thinkers as contrasted with those of uncritical thinkers as postulated by Vincent Ryan Ruggiero[64]:

Critical Thinkers . . .	**Uncritical Thinkers . . .**
Are honest with themselves, acknowledging what they don't know, recognizing their limitations, and being watchful of their own errors.	Pretend they know more than they do, ignore their limitations, and assume their views are error-free.
Regard problems and controversial issues as exciting challenges.	Regard problems and controversial issues as nuisances or threats to their ego.
Strive for understanding, keep curiosity alive, remain patient with complexity, and are ready to invest time to overcome confusion.	Are impatient with complexity and thus would rather remain confused than make the effort to understand.
Base judgments on evidence rather than personal preferences, deferring judgment whenever evidence is insufficient.	Base judgments on first impressions and gut reactions.
Revise judgments when new evidence reveals error.	Are unconcerned about the amount or quality of evidence and cling to their views steadfastly.

64 Vincent Ryan Ruggiero. *Beyond Feelings: A Guide to Critical Thinking*. New York: McGraw-Hill, pp. 21-22.

Are interested in other people's ideas and so are willing to read and listen attentively, even when they tend to disagree with the other person.	Are preoccupied with themselves and their own opinions and so are unwilling to pay attention to others' views. At the first sign of disagreement, they tend to think, "How can I refute this?"
Recognize that extreme views (whether conservative or liberal) are seldom correct, so they avoid them, practice fairmindedness, and seek a balanced view.	Ignore the need for balance and give preference to views that support their established views.
Practice restraint, controlling their feelings rather than being controlled by them, and thinking before acting.	Tend to follow their feelings and act impulsively

Critical Thinking in Indian Tradition

One should not be carried away by a new term and believe that one is being led into neo-colonization by borrowing a new idea from the West. As a matter of fact, while in the West the 'critical thinking' as it "has developed over the last 100 years"[65] we in India were made to discard it in favour of rot learning in the educational institutes. What can be a better example than the following of Critical Thinking: "*Whatever is old is not always correct, Whatever new is not always correct, Saint scholars examine and then adopt accordingly, And a fool always acts according to the brains of others.*"[66] or *"Just as gold is tested through rubbing, cutting, heating and beating; a man is examined on four (grounds) - liberality, character, efficacy (and) action."*[67]

65 Alec Fisher. *Critical Thinking: An Introduction*. Cambridge: Cambridge UP, rpt. 2013, p.1.

66 यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षण च्छेदन तापः ताडनैः। तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते तयागेण शीलेन गुणेन कर्मणा।। (चाणक्य नीति 5: 3) Just as gold is tested through rubbing, cutting, heating and beating; a man is examined on four (grounds) - liberality, character, efficacy (and) action.(Chanakyaniti5:3).

67 यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदन तापः ताडनैः। तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते तयागेण शीलेन गुणेन कर्मणा।। (चाणक्य नीति 5: 2) (Chanakyaniti 5: 2).

Conclusion:

On the basis of the above discussion, it can very safely be concluded that NEP 2020 is aimed at ushering in a paradigm shift in order to decolonise education and Indian mind. Much however will be in the hands of the teachers and policy makers who always look towards the West for their training and theoretical paradigms and an approval from the powers that are largely located in the so-called first world. It is a great challenge to change their mind-set. Rajiv Malhotra and Vijaya Viswanathan in their well-documented book entitled *Snakes in the Ganga: Breaking India 2.0*[68] unveils some uncomfortable truths concerning India's vulnerabilities. They claim that "an entire ecosystem of ideologies, institutions and young leaders is emerging for the recolonization of India." The authors caution us against regarding Critical Race Theory which is a reincarnation of Marxism which has penetrated in the US academia and which perhaps serves as the framework to address the menace of racism in North America.The authors also raise an alarm against "Wokeism" or "stay woke", a fall out of Black Lives Matter. The authors claim that the mission of this movement is to dismantle Indian civilization and heritage by waging an uncompromising war against India's government, educational institutions, culture, industry, and society as the groups claiming grievances (like Muslims and LGBTQ+) are artificially clubbed together, caste is falsely being equated with Race and the marginalized communities of India are misrepresented as Blacks and Brahmins as the Whites of India. The impact of such social movements which address some of the American problems is also felt on some of the Indian government's policies like the National Education Policy 2020 which is charged with propagating Harvard's liberal arts programmes by the authors. They further describe Harvard University as Ground Zero to develop these social theories in collaboration with Indian scholars, activists, journalists and artists. One has therefore to be on one's own guards against such subtle and nefarious designs and fend that one does not fall a victim to the neo-colonization in the process of globalization.

●●●

68 Noida: Occam - BluOne Ink, 2022.

REVISITING IMPLEMENTATION OF EDUCATION POLICIES IN INDIA: A ROAD AHEAD

Dr. V. B. Singh[1]

सा विद्या या विमुक्तये
(विष्णुपुराण)

Background: Higher education plays an extremely important role in promoting human as well as societal well-being and in developing India as envisioned in its Constitution - a democratic, just, socially-conscious, cultured, and humane nation upholding liberty, equality, fraternity, and justice for all. Higher education significantly contributes towards sustainable livelihoods and economic development of the nation. As India moves towards becoming a knowledge economy and society, more and more young Indians are likely to aspire for higher education (NEP, 2020).

Since India's independence, several important committees and commissions have been formed to address various aspects of education and educational reforms. We have witnessed a few of the many committees and commissions that have contributed to shaping India's education system. Each committee has addressed specific challenges and opportunities, influencing the direction of educational reforms in the country. The major reports which have impacted the growth and vision of education in our country are namely, University Education Commission (1948-1949) - Radhakrishnan Commission, Kothari Commission (1964-1966) - Education Commission: Chaired by D. S. Kothari, National Policy on Education (1986) - Swaminathan Committee, Program of Action (1992) - Acharya Ramamurti Committee, Sarva Shiksha Abhiyan Launched in 2001, National Curriculum Framework (2005) - Yash Pal Committee, Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan (2009) - Sam Pitroda Committee, National Knowledge Commission (2005-2009), Committee for Evolution of the New Education Policy (2015-2016) - TSR Subramanian Committee and National Education Policy

1 Professor of School of Computer & Systems Sciences, Jawaharlal Nehru University, New Delhi, India.

(2020) - K. Kasturirangan Committee.

The First University Education Commission: After the independence of the country in the year 1947, the need was felt that the country's university education should be restructured, so that it can be helpful in national and cultural revival, as well as the development of scientific, technical and other types of manpower. To make sure, a commission was appointed by the Government of India in November 1948 to report on Indian University Education. There were ten members in this commission. Radhakrishnan Commission, which we also call University Education Commission, Dr. Sarvepalli Radhakrishnan was the chairman of this commission. This commission was appointed on 4 November 1948. This commission submitted its report to the Government of India on August 25, 1949. The report consists of eighteen chapters and four hundred eleven pages. The corresponding chapters deal with Historical Retrospect, The Aim of University, Teaching Staff, Standards of Teaching, Course of Study, Post-Graduate Teaching and Research, Professional Education, Religious Education, Medium of Instruction, Examination, Students, Their Activities and Welfare, Women's Education, Constitution and Control Finance. It also discuss about the Banaras, Aligarh and Delhi Universities, other Universities including New Universities and Rural Universities followed by Conclusions. This was the first education commission of independent India.

1. The commission firstly visited all the reports related to education from 1857 to the date of notification of the commission. The commission presented its views regarding all the parts of university education and given a concrete suggestions for improvement. Since, this committee was set up in Independent India and they want to set a direction of higher education in this country.
2. While discussing the "THE AIMS OF UNIVERSITY EDUCATION" in chapter two, the commission gave some aims for the university education system. By considering the aim of University education, the commission categorizes into following category. It is a comprehensive aim for any University.

I New India

1. The Impact of Political Change
2. University as the organs of Civilization
3. Integrated Way of Life
4. Intellectual Adventure

5. Wisdom and Knowledge
6. Aims of the Social Order

II Democracy

7. Plan of Treatment
8. Value of the individual
9. Education as Growth
10. Physical education
11. The Triune character of human mind
12. Nature, Society and Sprit
13. Natural Sciences, Socials Studies and Humanities
14. Unity of Mind and Independence of Knowledge
15. Mechanical Learning
16. Inwardness of Freedom
17. Education as Imitation into a New Life
18. Inadequacy of Education as Adjustment to Society
19. Flexibility of the Education System

III Justice

20. Social Justice
21. The Present Needs
22. Agricultural Education
23. Technological Education
24. Rural Development
25. The Place of the Machine
26. Defects of Exclusively Scientific and Technical Education
27. Need for Social Studies and Research
28. Training for Leadership

IV. Liberty

29. University Autonomy
30. The Sprit of Science and Social Conservation
31. Liberal Education

V.Equality

32. The Democratic Way of Life
33. Freedom of Conscience
34. Equality of Opportunity

35. Economic Barriers
36. Communal Rations
37. Assistance to Background Communities

VI Fraternity-National

38. Extra-Curricular Activities
39. Indiscipline
40. The Residential System
41. College a Community Centre
42. National Discipline
43. The Need for Culture
44. The Un-Indian Character of Education
45. Cultural Unity of India
46. Conflict in India's Soul
47. Critical Study of the Past

VII Uninterrupted Continuity of Culture

48. The Indus Valley Civilization
49. The Vedic Period
50. Buddhism
51. Indian Influence Abroad
52. South India Teachers
53. The Spread of Islam
54. The Influence of Christianity
55. Chief Tenets of Indian Culture

VIII History of India

56. Study of Past
57. The Epics
58. Appeal of Ethics to the Youth
59. Living Cultures

IX Fraternity-International

60. World Mindedness and International Sentiment
61. Cultural Cooperation
62. Provincialism
63. Larger Patriotism
64. Unesco

65. Positive Peace
66. World Citizenship
67. Summary

3. If we look at the "AIMS OF THE UNIVERSITY", we find that nothing has been left. To build a person with good qualities, a society, a nation and the world, a framework has been presented in this chapter. It has also provided a roadmap. But, if we look at the University discourse, find that many points are missed in academic discourse later or from implementation point of view (3,4,5,8,11, 14, 42,43 and 45). **Specially the sections "Uninterrupted Continuity of Culture" and "History of India" has been completely missed or we can say that it has been put into a different orbit of thought other than the wishes of the commission's report.**
4. This commission attempted to structure the Indian education system with humanistic objectives and tried to match higher education with the social and economic needs of the society. Under this, the commission made many important suggestions in the field of education, which included self-reliance of universities and arrangement of courses based on need, quality monitoring of education, promotion of research and technological advancement in education. Apart from this, the commission made suggestions for providing financial resources for education, planning necessary reforms in the field of education and improving the training of teachers. Thus, the Radhakrishnan Commission recommended comprehensive changes to reform the higher education sector and tried to make higher education a significant step towards growth and prosperity. While discussing, the commission define the goal of education which are given below:

I The goal of education

1. Training for democracy.
2. Training for self-confidence.
3. To develop an understanding of the present as well as the past.
4. To provide vocational and professional training.
5. To awaken the innate ability to live life through the development of knowledge.
6. To develop certain values like- fearlessness of mind, power of discretion and integrity of purpose.
7. To acquaint the students with our cultural heritage for upliftment

II In the context of teaching faculty:

8. The commission recommended higher pay and better service conditions for teachers such as benefits of provident fund, residential accommodation, working hours and leave etc.
9. Teaching work should not be given for more than 18 hours in a week.
10. For the study of teachers, leave of one year at a time and 3 years in the entire service period should be given.
11. The retirement age from service was increased from 60 to 64 years.

III Level of Education :

12. There should not be more than 3000 students in universities and more than 1500 students in their affiliated colleges.
13. Only those students who have completed 12 years of schooling should be admitted to universities and colleges.
14. Number of working days – 180 in a year (excluding assessment time).
15. No text book should be prescribed for any course of study.
16. Evening classes should be started.
17. To raise the level of examinations, the minimum marks for first, second and third class should be 70, 55 and 40 percent respectively.

IV In relation to the administration and finance of the University

18. Higher education should be kept in the concurrent list. The central and state governments should share the responsibility in this.
19. The work of making policies related to education will be done by the central government and the state governments will implement those policies in their states.
20. A University Grants Commission should be established to bring uniformity in the universities and to provide grants to colleges and universities.
21. Structure and Organization of University Education:
22. Higher education should be organized at three levels - undergraduate (3 years), postgraduate (2 years) and research (minimum 2 years).
23. Higher education should be divided into 3 categories – Arts, Science, Vocational and Technical.
24. Separate departments should be opened in universities for arts, science, vocational and technical subjects.
25. Independent affiliated colleges should be established for agriculture, commerce,

engineering, technology, medicine and teaching training.

V Vocational Education: The University Education Commission has divided it into six categories.

26. Teacher Education
27. Agricultural Education
28. Commerce Education
29. Engineering And Technical Education
30. Medical Education And
31. Legal Education

Kothari Commission (1964-1966) - Education Commission: Chaired by D. S. Kothari, this commission was established to comprehensively review the state of education in India and make recommendations for its development and improvement. The commission's report led to significant changes in the education system, including the expansion of elementary education, curriculum reforms, and the promotion of science and technology education.

1. The main objective of this commission was to reform the Indian education system and strengthen it especially in the direction of modernization, professionalism, and social justice. Under this, the commission made various suggestions for reforms in various education sectors, which included generalization of education, improvement in the training of teachers, creation of standards for different levels of education, and improvement of financial resources for education. Along with this, the commission recommended measures to promote economic and social equality in the field of education and proposed new measures to improve the quality of education. The main objective was also to encourage equality in education, remove discrimination, and provide free and compulsory education to all children up to the age of 14.
2. Under this policy, elementary and secondary education were merged under general education and made compulsory and free for all children. In accordance with this policy, the trimester system (three-month quarterly leave) was implemented in the field of education. **This policy rejected the Gurukul system and reformed it according to the modern needs of the society.** This policy recognized and promoted science and technical education. Various measures were suggested to improve the training of teachers and to improve the qualifications and skills of teachers. Many important reforms were also made

in the field of higher education, such as improving the quality of education, encouragement of research, and new guidelines regarding universities.

National Policy on Education (1986) - Swaminathan Committee: Led by M. S. Swaminathan, this committee was responsible for formulating the National Policy on Education in 1986. The policy aimed at making education accessible, equitable, and of high quality. It emphasized the need for a common educational structure, adult education, and a focus on science and technology.

The National Policy on Education 1986 highlighted the need to create a reconstruction and reorganization principle for the development of education. Provided a detailed roadmap for implementing the objectives of the policy. The salient features given here represent the aspects of the National Education Policy 1986.

1. **Inclusion of Education:** The main objective of this policy was to ensure access of high quality education to all sections and regions of the society.
2. **Compulsory and free basic education:** The policy proposed to make basic education compulsory and free for all children.
3. **Reforms in Technical Education:** Technical and engineering education was encouraged and reformed as important.
4. **Denial of the Gurukul system:** The Gurukul system was reformed according to the modern needs of the society and was denied.
5. **Social Justice:** Suggested measures towards social justice in the field of education and ways to ensure equality among students.
6. **Technological Advancement in Education:** The policy encouraged technological advancement in education and suggested ways to integrate education with modern technologies.
7. **Reforms of higher education:** Improvement in quality in higher education, reform in the structure of universities, and importance given to research.
8. **Language education:** Language training was given importance and measures were taken to ensure equality between languages.
9. **Gravitation:** Measures to encourage teachers were given and several measures were recommended to improve their condition.
10. **Reconstructive Education:** The policy recommended measures to make education reconstructive and looked at education with the aim of preparing students for life.

Program of Action (1992) - Acharya Ramamurti Committee: Formed to

implement the recommendations of the National Policy on Education, this committee provided a roadmap for educational development in the context of the changing socio-economic scenario in India.

Sarva Shiksha Abhiyan Launched in 2001, the objective of the SSA was to provide free and compulsory education to all children in the age group of 6 to 14 years. In this, efforts were made to remove caste and social differences in education.

National Curriculum Framework (2005) - Yash Pal Committee: The Yash Pal Committee played a significant role in shaping the National Curriculum Framework (NCF) 2005. The NCF emphasized a learner-centered approach and promoted holistic development, critical thinking, and creativity. The framework aimed to provide guidelines for school education in the country and lay down the principles, guidelines, and focus areas for curriculum development. Here are some of the key features of the National Curriculum Framework (2005) based on the recommendations of the Yash Pal Committee:

1. **Child-Centered Approach:** The NCF 2005 advocated for a shift from a content-focused curriculum to a child-centered approach. It emphasized that the curriculum should be designed to cater to the diverse needs, abilities, and interests of students.
2. **Holistic Development:** The framework aimed to promote the holistic development of students, including cognitive, emotional, social, and physical aspects. It recognized the importance of nurturing creativity, critical thinking, and life skills.
3. **Constructivist Learning:** The NCF emphasized constructivist learning, which encourages students to actively construct their own knowledge through hands-on experiences, exploration, and interaction with the environment.
4. **Integration of Subjects:** The framework recommended an interdisciplinary approach to teaching and learning. It encouraged educators to integrate various subjects to promote a deeper.

Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan (2009) - Sam Pitroda Committee: This committee was formed to provide recommendations for the modernization and reform of secondary education (classes 9-12) in India. The committee's report led to the launch of the Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan (RMSA), a program aimed at enhancing access and quality of secondary education.

National Knowledge Commission (2005-2009): The National Knowledge

Commission was established to provide recommendations on various aspects of knowledge creation, dissemination, and application. It focused on higher education, research, innovation, and leveraging technology for education. It also created National Knowledge Network(NKN).

The Right to Education Act 2009 made education a fundamental right for children in the age group of 6 to 14 years and mandated the provision of free and compulsory education.

Committee for Evolution of the New Education Policy (2015-2016) - TSR Subramanian Committee: This committee was tasked with formulating a new education policy for India. The resulting report laid the foundation for the development of the National Education Policy (NEP) 2020.

National Education Policy (2020) - K. Kasturirangan Committee: The Kasturirangan Committee formulated the National Education Policy (NEP) 2020, which brought about comprehensive changes in the education system. The NEP focuses on holistic and multidisciplinary education, flexibility in curriculum, promotion of vocational education, and technology integration.

The National Education Policy 2020 worked to revive the idea of rebuilding the education system in India. There are several significant changes like focus on holistic and flexible curriculum, emphasis on skill development, encouragement of multilingualism, and inclusion of technology in education.

Inclusion of education: In the new education policy, the inclusion of education at all levels and holistic development in India has been considered as an important approach.

5+3+3+4 Educational System: In the new policy, education has been divided into 5+3+3+4 system, so that the morale of the children can be developed and their educational journey can be stable.

Promotion of scientific issues in agriculture, science, and mathematics: The policy outlines a number of measures to promote thinking and research in science, mathematics, and agriculture.

Education in mother tongue: The policy has suggested giving importance to primary education in mother tongue so that children can increase independence and understanding in school.

Improving teacher training: Measures have been suggested to improve teacher training, including prioritizing their professional development.

Reforms in Higher Education: New guidelines have been given to improve the quality in the field of higher education, in which research has been given importance.

Improvement in student tests: The policy outlines measures to improve the tests taking into account the understanding and leisure of the students.

Technological Advancement in Education: Technological advancement in education has been encouraged in the policy so that education can be modernized with measures.

Financial Reforms in Education: The policy outlines measures to boost financial resources for education and provide conditions for students to pursue studies in various disciplines.

Social Justice: To promote social justice in education, many measures have been mentioned in the policy so that students of every class can get these benefits.

Given the emergence of digital technologies and the emerging importance of leveraging technology for teaching-learning at all levels from school to higher education, this Policy recommends the following key initiatives (NEP 2020):

1. **Pilot studies for online education**: Appropriate agencies, such as the NETF, CIET, NIOS, IGNOU, IITs, NITs, etc. will be identified to conduct a series of pilot studies, in parallel, to evaluate the benefits of integrating education with online education while mitigating the downsides and also to study related areas, such as, student device addiction, most preferred formats of e-content, etc. The results of these pilot studies will be publicly communicated and used for continuous improvement.
2. **Digital infrastructure**: There is a need to invest in creation of open, interoperable, evolvable, public digital infrastructure in the education sector that can be used by multiple platforms and point solutions, to solve for India's scale, diversity, complexity and device penetration. This will ensure that the technology-based solutions do not become outdated with the rapid advances in technology.
3. **Online teaching platform and tools**: Appropriate existing e-learning platforms such as SWAYAM, DIKSHA, will be extended to provide teachers with a structured, user-friendly, rich set of assistive tools for monitoring progress of learners. Tools, such as, two-way video and two-way-audio interface for holding online classes are a real necessity as the present pandemic has shown.
4. **Content creation, digital repository, and dissemination**: A digital repository

of content including creation of coursework, Learning Games & Simulations, Augmented Reality and Virtual Reality will be developed, with a clear public system for ratings by users on effectiveness and quality. For fun based learning student-appropriate tools like apps, gamification of Indian art and culture, in multiple languages, with clear operating instructions, will also be created. A reliable backup mechanism for disseminating e-content to students will be provided.

5. **Addressing the digital divide**: Given the fact that there still persists a substantial section of the population whose digital access is highly limited, the existing mass media, such as television, radio, and community radio will be extensively used for telecast and broadcasts. Such educational programmes will be made available 24/7 in different languages to cater to the varying needs of the student population. A special focus on content in all Indian languages will be emphasized and required; digital content will need to reach the teachers and students in their medium of instruction as far as possible.
6. **Virtual Labs:** Existing e-learning platforms such as DIKSHA, SWAYAM and SWAYAMPRABHA will also be leveraged for creating virtual labs so that all students have equal access to quality practical and hands-on experiment-based learning experiences. The possibility of providing adequate access to SEDG students and teachers through suitable digital devices, such as tablets with pre-loaded content, will be considered and developed.
7. **Training and incentives for teachers**: Teachers will undergo rigorous training in learner-centric pedagogy and on how to become high-quality online content creators themselves using online teaching platforms and tools. There will be emphasis on the teacher's role in facilitating active student engagement with the content and with each other.

Even in the present NEP, 2020, many frameworks have been provided to implement the spirit of the report.

Implementation Issues: A multi-pronged approach is needed to address the implementation challenges, including increased funding for education, capacity building for teachers, targeted interventions for marginalized communities, and better governance and accountability mechanisms. **Despite this critical importance of research, the research and innovation investment in India is, at the current time,**

only 0.69% of GDP as compared to 2.8% in the United States of America, 4.3% in Israel and 4.2% in South Korea (from NPE,2020).

To overcome these barriers and achieve meaningful educational reform in India, sustained efforts and collaborative partnerships between the government, civil society organizations and communities are essential.

Addressing these issues requires comprehensive reforms that prioritize increased funding, curriculum revision, teacher training and support, improved infrastructure, inclusive policies and effective implementation mechanisms. It is important to ensure that educational policies are designed to meet the diverse needs of learners and promote equitable access to quality education for all.

The implementation of National Educational Policies in India has faced several challenges over the years. Although India has made significant progress in improving access to education, there are many issues that hinder effective policy implementation. Some of the major issues of implementation in the National Educational Policies in India include:

1. **Lack of adequate funds:** Education expenditure in India is less than the recommended standards set by international organizations. Inadequate allocation of funds hinders the implementation of policies, leading to shortage of resources, infrastructure and quality teaching staff.
2. **Lack of infrastructure and resources:** Many schools in rural and economically disadvantaged areas lack basic infrastructure such as classrooms, electricity and sanitation facilities. Inadequate infrastructure and paucity of resources hinder the quality of education and make it difficult to implement policies effectively.
3. **Quality of teachers:** Lack of well-trained and qualified teachers is a significant challenge in India. There is a need to enhance teacher training programs and attract talented individuals to the teaching profession. Effective implementation of educational policies becomes a challenge without competent teachers.
4. **Inequality in Access:** There are significant disparities in access to education across regions, especially between rural and urban areas. Remote areas often lack proper transport facilities, making it difficult for students to reach schools. Additionally, marginalized communities, including lower castes, tribal areas and those from economically disadvantaged backgrounds, face barriers to access to education.

5. **Language Barriers:** India is a linguistically diverse country with many regional languages. The language barrier creates challenges in the implementation of policies, especially when it comes to standardized testing and curriculum development. Balancing the regional languages with the national language (Hindi) and English as the medium of instruction remains a complex task.
6. **Assessment and Evaluation System:** The assessment and evaluation systems in India's education sector have faced criticism for excessive focus on rote learning and examination results. This approach hinders the holistic development of the students and fails to foster critical thinking and problem-solving skills. Effective implementation of policies requires a shift towards more comprehensive and skill-based assessment methods.
7. **Monitoring and Accountability:** For successful policy implementation, it is important to ensure proper monitoring and accountability mechanisms at various levels of the education system. However, lack of effective monitoring mechanism and presence of corruption and bureaucratic hurdles hinder the desired results.
8. **Inclusion and equality:** Despite efforts to promote inclusiveness and equality, there are still challenges in providing equal educational opportunities to marginalized groups including girls, children with disabilities. Discrimination, social prejudice and cultural barriers remain, affecting the implementation of policies aimed at ensuring equal access and quality education for all.
9. **Excessive emphasis on rote learning:** Many educational policies in India still focus on rote learning and exam-based assessment rather than fostering critical thinking, creativity and problem-solving skills. This approach limits the overall development of the students and fails to prepare them for the challenges of real life.
10. **Linguistic disparities:** India is a linguistically diverse country with many regional languages. Although policies aim to promote multilingual education, there is a lack of standardized curriculum and resources in regional languages. This creates a disadvantage for students who are not proficient in the major language of instruction.
11. **Implementation Challenges:** The translation of policies into actionable plans at the ground level faces challenges such as bureaucratic delays, corruption and lack of effective monitoring and evaluation mechanisms. This hinders the

effective implementation of policies and limits their impact.

12. **Skills Gap and Employability:** The education system in India has been criticized for not adequately addressing the skills needed in the job market. There is often a gap between the skills acquired through education and those demanded by industries, resulting in unemployment or underemployment among educated youth.
13. **Outdated Curriculum:** The curriculum in India is often criticized for being out of date and not keeping pace with the changing needs of the society and the economy. Curriculum reforms are needed to incorporate relevant and applied knowledge, technology integration and business skills.
14. **Lack of teacher training and professional development:** Teachers play a vital role in imparting quality education. However, there is a dearth of well-trained and qualified teachers in India. Inadequate investment in teacher training and professional development programs hinders the effectiveness of educational policies.
15. **Low Gross Enrollment Ratio:** Despite improvements in recent years, the Gross Enrollment Ratio (GER) in higher education remains low compared to global standards. Access to higher education is limited, especially for students from disadvantaged backgrounds, leading to reduced opportunities for skill development and employment.

Recommendations: Followings to be done if we want to grow the country the by means of education system and to repeat the globous period of the country:

1. To develop an automation based recruitment process and promotion of teacher without comprising on quality.
2. Make sure the availability of teachers for at least eight hours in the campus.
3. Every faculty must be provided web space to upload their own material, assignment and grading of students.
4. Real time attendance of the students.
5. Blind Feedback from students for every course.
6. Grading system must be followed but in Bell shaped (Normal Distribution)
7. The students at the top of Bell shaped curve can only participate in council election
8. The teachers must be categories as a teaching or research and teaching. Those

who are engaged in research, their workload can be reduced of teaching.

9. To provide an environment , where teachers can think innovative ideas related to teaching pedagogy and generate knowledge for the subject.
10. Developing an approach to solve societal problem through their subject.
11. Focus should be on both basic and applied research
12. Enhancement of Grants to Govt. Universitas and College. Making them self-sustainable is not an appropriate for our country.
13. University Fee structure should be based on the fee students have paid in previous classes irrespective of any cost and religion.
14. Skill training must be provided at best to the level of twelfth class.
15. Taking contents form the University Education Commission (Meditation for every students for at least 15 minutes)
16. The purpose of Education is same as mentioned in the University Education Commission report साविद्यायाविमुक्तये
17. Monitoring of NEP, 2020 is must.
18. Try to automate each and every actionable part of NEP, 2020 for making it transparent.
19. Financial support should be given to Universities not force them to go for financial Loans.
20. Each University and College should provide their achievements done by students of faculty on quarterly basis.
21. Trying to develop a culture of cooperative Advantage rather than competitive advantages amongst faculties and students of the Colleges and Universities.

"Everyone thinks of changing the world, but no one thinks of changing himself."

— Leo Tolstoy

●●●

THE CONFLUENCE OF NEW EDUCATION POLICY

Dr. Rajeev Kumar[1]

NEP aims at developing holistic individuals and for it advocates first to identify set of skills and values and then incorporate them at each stage of learning, from pre-school to higher education.

NEP wants to see India as a knowledge economy and society, and expect that youth, which constitute more than 50% below the age of 25 and more than 65% below the age of 35 according to the 2022 revision of the World Population Prospects, should become ambitious to join higher education. To recall, the Constitution of India provides for free and compulsory education for all children up to 14 years of age. In pursuance of this, Government of India has also enacted the Right to Education Act, 2009.

In India, both the Central and State governments have responsibility for education. Both Central and State governments operate schools and higher education institutions (HEIs). The Ministry of Education formulates and implements national policies, develops plans to improve access to education and provides for scholarships.

The number of institutions has expanded by more than 400 percent since 2001. The number of the universities in India has witnessed a substantial rise, increasing from just 320 in the year 2014 to a whopping 1,113 in 2023. This represents a threefold increase in the span of nine years.

In the last nine years, 5,298 new colleges have been established, resulting in increased access to education for students across the country. The number of colleges has risen from 38,498 in the year 2014 to 43,796 in 2023. The government has also expanded the number of IITs and IIMs across the country. In the past nine years, 16 new IITs and 13 new IIMs have been established whereas only 7 IIMs and IITs were operating in the year 2014. This expansion ensures enhanced opportunities for the students to pursue higher education in prestigious technical and management

1 Former Head: Department of Political Science, Former Dean: School of Social Science, Mahatma Gandhi Central University, Motihari, Bihar, Director: Projects and Sustainable Development-University of Science and Technology, Meghalaya. Email: rajeev.csss@gmail.com

institutions.[2]

India now has the world's second largest post-secondary education system (after China), enrolling more than 41 million students. However, access to education beyond higher secondary schooling was a mere 10% among the university-age population in India. India's GER was 27.1 percent in 2019–20. The Ministry of Education target is to achieve 32 percent by 2022. China has 51 percent and Europe and North America have 80 percent enrol in higher education. The Indian government's ambitious 2020 National Education Policy (NEP) seeks to increase the enrolment rate to 50%, from its current 27.3% by 2035. Thus, India will need to add around 34 million students to the system to achieve this goal.[3]

Back in 1964-66, the Education Commission had undertaken a broad review of education in India and set a target of investing 6% of India's GDP towards education, from both central and state governments. This target has been retained in multiple successive National Policies on Education, including the National Education Policy, 2020 (NEP). However, this target has never been met. In 2022-23, states and centre together estimated to spend about Rs 7.6 lakh crore on education, which is about 2.9% of India's GDP. 13 Overall allocation towards education has been around 2.8% to 2.9% of the GDP since 2015. This is low in comparison to countries such as Brazil (6.0% in 2019), South Africa, (6.6% in 2021), Indonesia (3.5% in 2020). The 15th Finance Commission had also noted that poorer states such as Bihar, Jharkhand and Uttar Pradesh lag in their key human development parameters related to education. Their per capita expenditure on education remains low. For example, in 2022-23 (budget estimates) Uttar Pradesh spent Rs 3,205 per capita on education, Bihar spent Rs 3,245 and Jharkhand spent Rs 3,626. The average per capita expenditure by larger states on education that year was about Rs 5,300. In 2022- 23, states on average spent about 14.8% of their budget on education.[4]

Thus, NEP advocates that the access of education should be increased and claim that the education sector if the second biggest after China in India. In this

2 David Tobenkin. 2022. India's Higher Education Landscape India's tertiary education sector faces a period of tremendous expansion as reform efforts aim to overcome challenges. April 2. https://www.nafsa.org/ie-magazine/2022/4/12/indias-higher-education-landscape

3 Aishe.2019-20.Ministry of Education.https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/statistics-new/aishe_eng.pdf

4 Demand for Grants 2023-24 Analysis : Education. https://prsindia.org/budgets/parliament/demand-for-grants-2023-24-analysis-education

endeavour, the new universities, colleges are allowed to be functional. The access of education is envisaged without anticipating the inequality and poverty condition of the country. In India, 10% people enjoy the country's 72% wealth, 5% enjoys 62% national wealth and 01% enjoys 40% country's wealth.

Under National Food Security Act, (NFSA) 2013, 81.34 crore persons, around 80 crore persons have been covered under NFSA at present for receiving highly subsidised food-grains. In financial year 2021, a majority of Indian households fell under the aspirers category, earning between 12,500 and 50,000 Indian rupees a year.[5]

The average income of an Indian family of 4.2 persons is Rs 23,000 per month. Over 46 per cent of Indian families have an income of less than Rs 15,000 per month i.e. belong to the aspiring or lowest-income cohort. 'The Money9' Financial Security Index survey stated. "Only 3 per cent of Indian households have a luxury standard of living and most of them belong to higher income cohorts (High- Middle and Rich)."[6]

We are talking about the increase of access of education while in 2021-22, 361 undergraduate places, 3,083 postgraduate seats and 1,852 PhD seats in the hyper-selective Indian Institutes of Technology were vacant. Further, in the similarly selective National Institutes of Technology, 685 undergraduate seats, 3,413 postgraduate and 914 PhD seats also remained vacant. Around 5,000 undergraduate seats, mainly at the peripheral colleges of the University of Delhi, remained vacant even after the last round of the admissions process in December 2022. Apart from thousands of vacant places in the traditional 'arts and science colleges', around 23,000 seats are vacant in the state's engineering colleges.[7]

Starved of tuition revenue, hundreds of private institutions have been closed. During 2021-22 alone, around 40 institutions, mainly offering engineering and other professional courses and 1,041 undergraduate, postgraduate and diploma courses approved by AICTE, were 'progressively closed.'

In other perspective if one see, it will be found that a total of 11,45,976 students cleared the NEET UG 2023, 20,38,596 candidates appeared in the examination. There are 322 Government colleges, 48012 seats in it, the rest students.[8]

In spite of qualified, could not get admissions in government institutions. They

5 https://nfsa.gov.in/portal/nfsa-act

6 https://www.india.com/business/average-income-of-indian-family-is-rs-23000-per-month-survey-5725299/

7 https://www.universityworldnews.com/post.php?story=20230628081508207

8 NMC 2022 official data.

had a choice to take admissions in private medical colleges which charge high fee that most of them could not afford. The result is they take admission in government dental, Ayurvedic etc colleges. Many students could not take admissions anywhere.

Similarly, a total of 17,385 seats are available in all 23 Indian Institute of Technology (IITs) across India, indicating a slight increase from last year's total of 16,598 seats. In 2022, out of the 155,538 candidates who took the JEE Advanced exam, 40,712 candidates qualified (34,196 males and 6516 females), many among them could not take admissions.

Today, India has 56 Central Universities, 475 State Universities, 447 State private Universities and 125 Deemed to be Universities. The seven Central Universities were opened from 2014 onwards; Rani Lakshmi Bai CU Jhansi (2014), Mahatma Gandhi CU, Bihar (2014), National Sports University, Manipur (2018), Sindhu CU Ladakh (2021), Central University of Andhara Pradesh (2019), CU of AP (2019), and Gati Shakti Vishwavidyalaya, Vadodara (2022). Almost all Universities are still working in transit camps or in rented buildings.

It is also significant to note that 6000 faculty posts have been lying vacant at Central Universities, 4526 in IITs, 496 in IIMs.[9] Although 75 per cent of higher education is in the private sector, the best institutions — IITs, IIMs, NITs, AIIMS, NLS — have all been set up by the government. Despite having the largest base of 1000-plus universities in the world, only 15 higher education institutions from India are in the top 1,000.[10]

Grants released by the UGC under minor and major research projects (science and humanities) have also been falling, the response shows. They came down from Rs 42.70 crore in 2016-17 to Rs 38.60 crore in 2017-18, to Rs 13.26 crore in 2018-19, to Rs 5.75 crore in 2019-20 and to Rs 38 lakh in 2020-21.

In a written response to TMC Rajya Sabha member Jawhar Sircar, the ministry revealed that in 2020-21, only Rs 165 crore out of Rs 300 crore allotted for Rusa could be spent. In 2019-20, Rs 2,100 crore was allotted and Rs 1,277 crore used. In 2021-22, Rs 3,000 crore was allotted. The figure has now been revised to Rs 793.26 crore. Rusa is a central scheme to fund state government-run institutions of higher and technical

9 Dharmendra Pradhan.Minister of Education informed the Parliament on 15March,2023.https://indianexpress.com/article/jobs/over-6000-faculty-posts-vacant-at-central-universities-4500-iits-8499285/

10 https://www.thehindubusinessline.com/opinion/what-ails-higher-education-in-india/article66108558.ece

education.

In addition, the funding to government academic institutions are used to provide in the later half of the financial year and due to bureaucratic nature, it remained un-utilised. In a response to a separate question, the government said that in 2021-22, the unspent balance (as on January 11) of central universities and centrally funded higher education institutes stood at Rs 7,143 crore. It was Rs 274 crore in 2020-21 and Rs 355 crore in 2019-20.

The JNU Vice-Chancellor Santishree Dhulipudi Pandit has expressed her disappointment over the lack of increase in the budget allocation to the premier university over the past several years. Speaking at The Indian Express's Idea Exchange session, Pandit said, "When you give us ratings, give us the money as well. Today, we are cash strapped. We are running at a Rs 130 crore deficit. You can't do this to an institution you rate as number one."

In addition, Public universities' finances are in a precarious condition due to chronic under-funding. Over the past eight years, discounted for inflation, grants to central universities have been declining. A healthy ecosystem of government-funded institutions is withering away. The financial condition of most of the Central Universities, and State Universities and colleges is precarious. In some of the select central universities, the average annual deficit during 2013-14 to 2020-21 has ranged from Rs 64.64 crore to Rs 421.35 crore. As a percentage of the total expenditure, their deficits ranged between ~20-33%.The per-student grant to the central universities over the past eight years, for example, has recorded a Compound Annual Growth Rate (CAGR) of 2.58%. The situation has been further aggravated due to the discontinuation of the development grants that these universities used to receive under five-year plans. Instead, they must access loans from Higher Education Funding Agency (HEFA) under the scheme of Revitalising Infrastructure and Systems in Education (RISE). Even though the government bears the interest burden and up to 90% of the principal, the borrowing university is required to repay 10% of the principal amount over a period of 10 years. This leads to a repayment obligation in their annual expenditure. Wary of their inability to meet repayment obligations, only 26 of the 48 central universities have so far accessed HEFA loans totalling Rs 4,142 crore—averaging Rs 159.3 crore per university. The rest have probably given up on infrastructure and equipment upgradation. In contrast, during the 11th and 12th five-year plans, all the central universities, received Rs 7,829.53 crore and Rs 9,346.29 crore, respectively.

No wonder the central universities are now reeling under a resource crunch and are crumbling from within and outside.[11]

The Universities are not able to provide best infrastructure, rich labs and resource funding to innovations due to resource crunch. The Centre in December 2022 informed the Lok Sabha that more than six lakh Indians went abroad for higher education till November 2022, compared with 4.44 lakh in 2021.

Central universities and obviously State Universities have, thus, been under tremendous pressure to raise resources on their own, perhaps the message of 'Atmnirbhar Bharat' is the same. The established criterions for NAAC accreditation, the resource mobilisation has more marks than others. It leads to increase the tuition fee.

Thus, there are two primary reasons for decline of admission, and closure of the institutions, first, the fee is unaffordable and second, the traditional courses are not able to provide jobs. NEP promises on quality education. A quality higher education must enable personal accomplishment and enlightenment, constructive public engagement, and productive contribution to the society. It must prepare students for more meaningful and satisfying lives and work roles and enable economic independence which is called today, prepare 'job ready youth.'

In this perspective, the Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY) is a flagship skill development program of the Government of India. It was launched in 2015, Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana 1.0 with the aim to up-skill and re-skill 10 million youth in India in different sectors. The PMKVY is implemented by the National Skill Development Corporation (NSDC) in partnership with various stakeholders. Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana 2.0 (2016-20). To train and certify 10 million youth by 2020. Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY 3.0) on 15 January 2021 to train and certify 15-20 million youth by 2022. On 1st February 2023, the Union Finance Minister Nirmala Sita Raman launched PMKVY 4.0 in order to skill lacs of youths within the next 3 years.

In this respect, the Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY1.0) was aimed to encourage and promote skill development in the country by providing free short duration skill training and incentivising this by providing monetary rewards to youth for skill certification. Later PMKVY 2.0 and 3.0 were also launched and have been closed. Now, PMKVY 4.0 was launched on 1st February, 2023 and in operation.

11 https://www.financialexpress.com/opinion/the-problem-with-higher-education-funding/2917647/

The ground report is that this policy could not produce expected results due to inherent impractical policy guidelines and poor execution. Earlier, the recognised training centres have to provide jobs after training which were considered extra liability. Later this clause was removed. Now, the people of 15 to 45 years who are out of education and may be drop outs are expected to be trained for various jobs. About 600 jobs under various categories are identified by the government. But still there are many flaws like, every job has certain job hours training but this training will be executed daily from the start days. The most of the candidates are workers and not available in working days. They can come to the training place on Sundays. Besides, they have to obey Aadhaar linked attendance system and certain complicated system for registration that cannot be followed by an uneducated rural innocent people. There are people who are used to talking on a mobile phone but cannot convey their OTP messages. Again, PMKVY 4.0 is facing complicated computer process of implementation which most of the time face technical problems. I know the centres approved under the scheme in March 2023 but could not start the scheme due to these problems and who started following easy targets. There are many schemes which could not be implemented for few reasons like, One MP One Idea; Sansad Adarsh Gram Yojna; Pradhan Mantri Ujjwala Yojana etc. Now, the government has launched Ujjawala Yojna 2.0, learning lessons when the country is approaching to General Election.

The Economic Survey 2022 noted that impetus must be given to education and skilling to match the requirements of modern industry. One of the goals under NEP is to integrate vocational education with general education and making vocational education more mainstream. Workforce participation rate refers to the percentage of the population aged 15 and above that are employed. With the NEP suggesting increasing the GER for higher education to 50%, which is almost twice as the current levels, employability and availability of jobs for these graduates, remains a key challenge.

Indian corporations and employers found a rich supply of highly employable graduates in states such as Maharashtra and Uttar Pradesh. The demand for professionals with a year or more of working experience outweighed that of graduates without experience, thus, driving up the preference for internships. Some of the most employable candidates in 2022 were graduates with degrees in engineering, business administration and pharmacology.

However, higher employability did not translate to employment among women

as was indicated by the country's unemployment rate. Furthermore, the participation of women at work was negligible in comparison to their male colleagues. More Indian men were found to be employed than Indian women as per the labour participation rate in the final trimester of 2021.

NEP envisages that the world is undergoing rapid changes in the knowledge landscape. With various dramatic scientific and technological advances, such as the rise of big data, machine learning, and artificial intelligence, many unskilled jobs worldwide may be taken over by machines, while the need for a skilled workforce, particularly involving mathematics, computer science, and data science, in conjunction with multidisciplinary abilities across the sciences, social sciences, and humanities, will be increasingly in greater demand.

There are diachotomies. On the one side we talk about access of quality education but education is becoming costly and it is not inclusive and affordable. We are opening the new institutions and simultaneously withdrawing grants, therefore, newly opened institutions are not able to stand on their own. We formulate best policies but they are failed in execution. We could not fix accountability and under bureaucratic process it became null and void.

The government academic education infrastructure is trying to bring novelties for inclusive quality education delivery. The government and academics are challenged to improve service delivery and efficiency in education system. There is a large section who does not get the opportunity of education due to lack of financial and social resources. The learning for all, removing learning poverty, preserving peoples identity and helping in reaching out SDGs Goals require improvement in government policies, governance, accountability, and management of academic institutions.

The NEP document observes that "India has a long tradition of holistic and multidisciplinary learning, from universities such as Takshashila and Nalanda, to the extensive literatures of India combining subjects across fields. Ancient Indian literary works such as Banabhatta's Kadambari described a good education as knowledge of the 64 Kalaas or arts; and among these 64 'arts' were not only subjects, such as singing and painting, but also 'scientific' fields, such as chemistry and mathematics, 'vocational' fields such as carpentry and clothes-making, 'professional' fields, such as medicine and engineering, as well as 'soft skills' such as communication, discussion, and debate. The very idea that all branches of creative human endeavour, including mathematics, science, vocational subjects, professional subjects, and soft skills should

be considered ‘arts’, has distinctly Indian origins. This notion of a ‘knowledge of many arts’ or what in modern times is often called the ‘liberal arts’ (i.e., a liberal notion of the arts) must be brought back to Indian education, as it is exactly the kind of education that will be required for the 21st century.”[12]

The Indian education sector is seen in commercial angle and holds a prominent position globally. India is home to the world’s largest network of higher learning institutions with promising growth opportunities. The total worth of the education sector was estimated at a value of over 117 billion U.S. dollars and this is expected to grow up to 225 billion U.S. dollars by 2025 with the ed-tech market estimated to hit approximately 30 billion U.S. dollars by 2031.[13]

It is obvious that the financially elite class is able to take education particularly technological education in private institutions. NEP is formed and being implemented in market oriented capitalist economy, where education fee will be higher. Otherwise, middle class has to take education loan to bear the cost of it. Indian Bank sanctions loan amounts up to Rs.15 lakh for admissions in India and up to Rs.25 lakh for students applying for institutions abroad. According to Reserve Bank of India’s (RBI) data, the outstanding portfolio under education loans grew 17 per cent at Rs. 96,847 crore in the year 2022-23 as against Rs. 82,723 crore in the previous year.

Loans for higher education in domestic institutions are attracting greater caution from some leading banks due to ‘doubts’ about job opportunities and repaying ability after completion of the studies, reveal some applicants. "Some of our students informed us that a leading public sector bank denied loans on the grounds of the low average salary packages after completion of the course," a functionary of a private business school said.

The Non-Performing Assets (NPAs) in education advances stood at 7.82 per cent of a total outstanding portfolio of Rs. 80,000 crore at the end of the first quarter of FY23. The NPA data for the full year is yet to come. The priority sector educations loans slow only modest growth as they registered 0.9 per cent growth in FY 23. In the previous financial year, they decreased by 7 per cent.[14]

12 Bhushan Patwardhan and K.P. Mohanan. RE-IMAGINING ASSESSMENT AND ACCREDITATION IN HIGHER EDUCATION IN INDIA. Draft 44: May 31, 2022

13 https://www.statista.com/topics/6146/education-in-india/#topicOverview

14 https://www.thehindubusinessline.com/money-and-banking/education-loans-register-17-growth-in-fy23-turning-positive-for-first-time-in-five-years/article66959891.ece#:~:text=According%20to%20Reserve%20Bank%20of,crore%20in%20the%20previous%20year

The NEP will not implement in vacuum. At present social, economic, and political status have to keep in mind. Many social ills exist even today which had sapped the vitality and vigour of the Hindu society. A number of social thoughts and practices are operating as serious obstacles to the growth and development of nation's economy. Does the NEP have any plan to cure the society of this malady and make it socially healthy and culturally strong? For example, the Varna System has come down to the Hindu society from ancient times. The four-fold division of the society was done on the basis of action or occupation as generated by each individual's ability, aptitude and interest. The caste system is a realty. The Hindu society has split up into innumerable sub-castes among the major castes. The homogeniety of Hindu society has almost gone. There are researches that show that the rise of inequality in the social structure led to the inequality of educational opportunity and the rise of social inequalities led to loss of universalism in education which further contributed to the perpetuation of social equalities. Can we claim that the appointments in our universities including faculties and vice chancellors are happened on the merit? Then how can we aspire for quality and inclusive education?

In ancient India, religion was a great motivating force in the field of education because religion had absorbed Hindu Life in almost all its phases and the sphere of education was no exception. Several religious rituals like, *Vidyarembha Sanskara, Upanayana Sanskar, Sravani Utsarjana, Godana Vrata Samavaratana* had predominantly educational significance. Altekar derived the following aims of ancient Indian educational system : Formation of character, building up of personality, preservation of an ancient culture, and the training of the rising generation in the performance of religious and social duties.[15]

The vision of NEP is "an education system rooted in Indian ethos that contributes directly to transforming India, that is Bharat, sustainably into an equitable and vibrant knowledge society, by providing high-quality education to all, and thereby making India a global knowledge superpower."

The Vedic Theory believes that Knowledge is the act of knowing something. It implies that knowledge pertains to 'something' and if there is nothing there can be no knowledge at all. This 'something' may be either a subject or an object. This would divide knowledge into two main divisions, viz., subjective knowledge and objective knowledge. Subjective knowledge points out to two main categories- (i) the human

15 A.S. Altekar. 1934. Education in Ancient India. The Indian Book Shop.

spirit, and (ii) internal phenomenon about which human spirit has consciousness. Objective knowledge relates to all the phenomenon in the external universe, which are outside the human body.

The process of acquiring knowledge functions in three ways. The act of knowing may be deductive or inductive or intuitive. Induction takes us from scattered individual experiences to generalisation. Deduction is an application of generalisations earlier arrived at to particular situation. In the intuitive process of acquiring knowledge, sometimes both deduction and induction take place, but it is an inward process which leads an individual to an act of knowing, i.e. towards a decision.

Subjective knowledge experiences may be acquired directly or indirectly. It may be acquired also through perception. But something may be perceived subjectively or objectively. "The objects which are perceived by the powers of the organs are not determined by the perceivers themselves." This is the nature of knowledge gained through the medium of perceptual cognition. Knowledge may be acquired through inference. The inference is based on laws of the unity and uniformity of nature. These laws are verified by experiences, but they are not discovered by them. Knowledge can be obtained by intuition too. The intuition has core-relation with apprehension. The process of apprehension involves the process of perception and inference.[16]

Education leads from darkness to light, from untruth to truth, from ignorance to knowledge. The light is also the light of one God who is Supreme Being and who is the creator and controller of the Universe, man or soul and the matter. The light is that God is one, though it has a hundred names which signify only his traits, who is formless, and who is just, merciful and loving. Education is thus a light to be given to children as well as to adults about the true concept of God and his true relationship with Soul and matter. The term Veda itself means that the knowledge of achieving spiritual ends. The subject matter of the Vedas is two fold, viz. Dharma and Brahma or God. Education is therefore, a means to enable an individual to know Dharma and God.

Reality is the ultimate aim of human life and hence of true education. Education is a process which leads to this knowledge. Application of knowledge to the problems of life is wisdom. There are two kinds of knowledge- the higher and the lower.(*the*

16 For detailed observation, S.M. Divekar. 1960. A Critical Study of the Educational Philosophy of the Upnishads. Baroda; Radha Kumud Mukherjee. 1960. Ancient India Education. Delhi: Motilal Banarsidas; H.R. Ghosal. 1952. An Outline of History of Indian people. New Delhi: Ministry of Information and Broadcasting

Para and apara Vidya). Education is a slow process passing through the lower planes to higher planes. The *Apar Vidya* must lead to *Para Vidya* gradually but definitely. Education must help man to know himself in relation to the universe and God. It must help him to get peace of heart, develop detachment towards material life. Education must be life building, man making, character making and assimilation of ideas. True education should lead to the total development of the personality.

We have today densely populated and urbanised market-based life styles where young people's development has been conditioned by the rising of highly competitive skills-based labor markets that demand new forms of concrete capital, obviously education is among them, for young people to succeed. The profit making attitude has exposed that parents are shifting toward greater investment in fewer children so that they can invest more in their children's fixed capital for them to compete successfully. Simultaneously, the evolution of market-based capitalism has been associated with the rise of essential values such as individualism, materialism and status-seeking, which have intensified over the past years in India. It is called consumer economies. The dominance of extrinsic values is consequential when young people show disproportionate extrinsic relative to intrinsic values there is an increased risk for mental health problems and poorer well-being.

Capitalism is an economic system based on private ownership of the means of production and their operation for profit. The capitalism is an economic and social system that exerts broad and significant influences on how social relationships are organised and experienced. The basic function of education under capitalism is to produce the next generation of compliant workers. In a capitalist society, the inequality increases. Another explanation of inequality argues that wealthy families have access to a superior education and therefore pass on their economic status. On its face, this idea seems pretty obvious. The children of the 01 percent attend elite private schools with lower teacher-to-student ratios, significant educational resources, and so on. These students then use their education to obtain higher-paying jobs and preserve their inherited economic class. Those who can't get a high-quality education are left with few resources and subpar services.[17]

The strong materialistic values help to maintain consumer capitalism, but they can have negative consequences for individual well-being, for social equity and for environmental sustainability. Individuals holding strong materialistic values place

17 https://jacobin.com/2021/06/schooling-in-capitalist-america-progressive-education-reform

greater importance on acquiring material goods. They consider the acquisition of material goods to be means of improving their own happiness and believe that the number and quality of possessions owned serve as an indicator of their own and other people's success. Materialism is concerned with the pursuit of one's own success and happiness over that of others. Self-enhancement values conflict with intrinsic, or self-transcendent, values such as benevolence and universalism which are focused more on the well-being of others and the environment.[18] In India, many major industries have moved from the government sector to the private sector in recent years; these include airports, hospitals, ports and harbors, railroads, and water works.

In today's economic system, it is considered that all levels of education are important in the formation of human capital of the quality demanded, general education, vocational education, additional education, vocational training. As the research results and many years of experience in the field of higher education show, entrepreneurs (employers) have complaints about the quality of education in general. Thus, dissatisfaction with general education is argued by the lack of basic skills that school leavers need to perform jobs that do not require special vocational training. According to employers, modern state standards, covering many competences do not guarantee successful employment of boys and girls directly after general education. That's why the government is encouraging so called "job ready skill training".

In the capitalist economy, one does not know when one will get the job and when one will lose it. The economy believes that unemployment can have a devastating impact both on a household and the general economy. The loss of income has an immediate effect in the reduction of consumer spending. However, the increase in uncertainty for the household can have a multiplier effect on the reduction of consumer spending. A household that endures unemployment is likely to significantly cut spending, often in excess of the loss of income due to the uncertainty, and the resumption of spending can lag after the return of income. The psychological impact of unemployment on a household can have a significant impact on the broader economy. For this reason, economists have long sought better information on the dynamic influences of the re-employment market. It is in society's best interest for the newly unemployed to quickly navigate the re-employment market and re-emerge with the best wage outcome possible.

18 Burroughs J.E., Rindfleisch A. 2002. Materialism and well-being: A conflicting values perspective. J. Consum. Res. 2002;29:348–370.

Thus, effects of consumer economy and market economy on the NEP are visible. We have to adopt an education system where students study under close and constant supervision and guidance of their teachers. We cannot hand over to them to machine. The close and constant association with teachers moulds a student's character. Self or inner discipline develops. The habit of regular study develops. In Army training, the training hours decide the timing of the study, the trainers follow it. The direct teacher nurtures the nature of self help, self service, simple living, hard work, cooperation, righteousness, celibacy etc traits. A kind of father-son-daughter relationship develops between them. Education imparted by the teacher and acquired by '*antevasin'* students was soul building, mind developing, personality making, morally stimulating and harnessing unfolding the best in the individual. The online education and encouragement of hybrid learning cannot do that.

We had Gurukul model in ancient India which is followed by some institutions at present too. In fact, the life of student is governed by rules. The teacher student relationship is based on moral foundation. The austerity of discipline to be observed by the student was puritanic. Our values suggest that in this time frame a student should lead *Bramacharya* life style. In that system, all students whether one is a prince or princes, a son or daughter of a rich man were used to receive the same treatment. A student was treated like a *tapasvi,* today he is customer.

The Buddhist monastic universities like Nalanda and Vikramshila were like modern universities of Oxford located in towns where arrangements were made for the lodging and board of the students who flocked their in thousands. Today, the encouragement of home learning cannot be an alternate to the system where the students were used to live in close association with their mentors. In our ancient education system, the authorities were used to strategise about the location of the Universities too. It should be near town, in a peaceful environment and close to the nature. The Naturalists believe that a child learns best from Nature's free and invigorating environment. Today, the system does not prefer such aspects; the result is that the new institutions could not stand in their own campus after many years.

In fact, our ancient or pure Indian educational philosophy was based on idealism which considers the inculcation of spiritual values among its students had great significance. However, it does not deny the reality of the world but maintains the mystical self realisation. This aim can only be achieved when the student gets education in a natural environment with close contact with mentors. Satyavrata says, "The child,

as soon as he steps into the threshold of the temple of learning, must surrender himself his body, mind and soul to the care of the teacher."[19] In the West also, the Humanistic movement emerged during fourteenth to sixteenth centuries which recognised the modification of Character. We are livening in an campus environment which has sex problems, juvenile delinquency, student's protests, exploitation of students and the teachers, and where everything is considered in monetary terms, the only hope is to return to adopt a education policy which is based on pure Indian philosophy. We have certain responsibility to prove Hindu values and thought's universality which can lead todays world that is crazy for so called development where there is no peace, satisfaction, only depression and dissatisfaction. Dr A S Altekar has said that Hindu civilisation is unique where we find surprising exception to the general rule. And the field of education is most noteworthy in this respect.

●●●

19 Siddhantalankar Satyavrata. 1971. Fundamental Principles of the Gurukul System. Haridwar-Kangdi.

प्राचीन भारतीय मूल्यों की ओर लौटती शिक्षा

डॉ. ओम प्रकाश सिंह[1]

भारत विश्व की सबसे प्राचीनतम जीवित संस्कृति का देश है। इसकी इस निरंतरता एवं प्राचीनता का श्रेय निश्चित रूप से शिक्षा की व्यवस्था में छिपा है। समय के साथ बदलाव एवं निरंतरता इसका स्वाभाविक गुण है। स्वाभाविक गुण एक दिन में नहीं बनते हैं, इनके बनने में शताब्दियों का चक्र चलता है। समय के इस चक्र में जो व्यवस्थित है वही बचता है और जो व्यवस्थित नहीं रहता वह नष्ट हो जाता है, इसीलिए कहा जाता है कि दुनिया की अनेक सभ्यतायें तथा संस्कृतियाँ- जैसे मेसोपोटामिया, परसिया, सुमेरियन आदि मिट गयी, लेकिन वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता के साथ ऐसा नहीं हुआ। वैदिक सभ्यता, संस्कृति एवं ज्ञान अभी भी अपनी यात्रा में है। इस अनवरत यात्रा का श्रेय समाज एवं उसकी ज्ञान परम्परा को है। इस ज्ञान परम्परा को दर्शाने वाले ऋग्वेद के दो मंत्रों का संदर्भ महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के मंत्रों में उल्लेख इस प्रकार है-

'मा नः परि या ख्यदक्षरा चरन्त्य ...।'[2]

अर्थात् अक्षरमय वाणी विद्यादेवी प्रगति करती हुई हमें न छोड़ देवें।

इसी क्रम में यह भी उल्लेख है-

'... सरस्वती जुनन्ति न तस्य'[3]

अर्थात् सरस्वती जिसे उत्तम कर्म में प्रेरित करती हैं।

ऊपर लिखे दो मंत्रों में अक्षरा (विद्या) एवं सरस्वती का उल्लेख है। अक्षरा का अभिप्राय-अक्ष+र= आँख जिसमें रमती है। इस प्रकार अक्षरा का अर्थ ऐसी शब्द विद्या से है, जो अक्षरों में रहती है, जिसका स्वरूप लिप्यात्मक अथवा चित्रात्मक है, लेकिन सरस्वती इस ज्ञान से भिन्न है। सरस्वती का सम्बन्ध प्रेरणा तथा अन्तस्थ से है। सरस्वती, ज्ञान, चिन्तन, बोध अथवा परम्परा की प्रतीक है। सरस्वती ज्ञान-प्रवाह का प्रतिनिधित्व करती है। इसी कारण अक्षरा अथवा विद्या से सरस्वती का महत्व अधिक है। विद्या मात्र ज्ञान रूप

1 प्रोफेसर, पूर्व निर्देशक, मालवीय पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी-221002 (उ.प्र.)

2 ऋग्वेद-7/36/7

3 ऋग्वेद-7/40/3

है, परन्तु सरस्वती जीवन प्रवाह रूपी ज्ञान धारा है, जो सहस्त्रों वर्षों से अविरल गति से चलती आ रही है। इस प्रकार वैदिक मान्यता में ज्ञान के दो रूप- विद्या एवं सरस्वती के रूप में मिलते हैं। इन दोनों में सरस्वती को श्रेष्ठ माना गया है।[4] व्यवहार में देखें तो दुनिया के अन्य देशों एवं संस्कृतियों में विद्या (अक्षरा) की परम्परा है, परन्तु सरस्वती की नहीं है। इसे, इस उदाहरण से भी समझ सकते हैं, जैसे भारतीय ज्ञान परम्परा का प्रारम्भ वेदों से है। वेदों का काल करोड़ों वर्ष पुराना है लेकिन वर्तमान में पश्चिमी विश्व, जो वैदिक ज्ञान वाले भारत को छोड़कर शेष सम्पूर्ण विश्व के ज्ञान का अगुवा है, उसकी ज्ञान परम्परा सुकरात, प्लेटो से प्रारम्भ होती है। सुकरात, प्लेटो का काल भारतीय इतिहास में मौर्य शासन व्यवस्था के समीप है। मौर्य शासनकाल, वैदिक ज्ञान के विकास क्रम में लाखों वर्षों के बाद का विकास क्रम है। इस प्रकार कह सकते हैं कि पश्चिमी ज्ञान वास्तव में वैदिककालीन ज्ञान की तुलना में प्राचीन नहीं नवीन है।

पश्चिमी ज्ञान की प्राचीनता अथवा नवीनता की चर्चा करना इस कारण आवश्यक है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि समयगत गहराई कहाँ है। समयगत गहराई में ही व्यापक रहस्य छिपा है। इस रहस्य का मूल प्राचीनता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि प्राचीनता में ही नवीनता छिपी है, जो प्राचीन है, उसी से अथवा उसी का नवरूप नवीनता है। इस प्रकार नवीनता या तो प्राचीनता का विकास होती है अथवा प्राचीनता का संशोधन अथवा प्राचीनता का विलोम। वास्तव में देखें तो स्पष्ट होगा कि पश्चिमी ज्ञान परम्परा प्राचीन भारतीय ज्ञान अथवा वैदिक ज्ञान की विलोम जैसी है, क्योंकि वैदिक ज्ञान जिन आधारों पर खड़ा है, उसमें प्रमुखता ज्ञान, अध्यात्म, सत्य, धर्म, मूल्य आदि का है। पश्चिम की प्रमुखता उक्त से हटकर भौतिकता, मुनाफा, बाजार पर अधिक है। पश्चिमी चिंतन में अपरा का वर्चस्व हैं, जबकि भारतीय चिंतन में परा का वर्चस्व है। इसी परा और अपरा के वर्चस्व के परिणाम स्वरूप दोनों की शिक्षा एवं चिंतन में भी अन्तर स्वाभाविक है।

भारतीय शिक्षा में समन्वय के तत्वः शिक्षा एवं चिंतन के व्यापक आधारों पर विचार करने पर भारतीय व्यवस्था में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग की व्यवस्था नजर आती है। भारतीय चिंतन में प्रत्येक युग की अपनी शिक्षा एवं चिंतन व्यवस्था है। इसके विपरीत पश्चिम की चिंतन योजना में भूत, वर्तमान एवं भविष्य जैसे संदर्भ ही हैं, इनमें अतीत के स्थान पर वर्तमान की प्रमुखता है। इससे स्पष्ट है कि चिंतन, ज्ञान, आदि के क्षेत्र में गहराई हमें पश्चिम में नहीं प्राप्त होती, लेकिन उसका विज्ञानवाद, प्रयोगवाद निश्चित ही हमें आकर्षित करता है। मूल्य के स्थान पर सुखवादी व्यवस्था, परमार्थ के स्थान पर स्वार्थवादी व्यवस्था पश्चिम में प्रमुख है। इन आधारों पर भी भारतीय एवं पश्चिमी व्यवस्था के मध्य भेद है। यह एक सत्य है।

इस सत्यता के मध्य हमें यह दिखाई पड़ रहा है कि पश्चिम की राह पूरब से भिन्न है। पूरब सूर्य के उदय एवं प्रकाश का केन्द्र है, इसके विपरीत पश्चिम सूर्यास्त एवं तम का प्रतीक है। पूरब व पश्चिम का यह नामकरण हम नहीं कर रहे हैं, इसे तो पश्चिम मानता है। पश्चिम को पश्चिम पर गर्व है। यह गर्व

4 सिंह ओम प्रकाश, संचार के मूल सिद्धान्त, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2018, पृ.-199.

कोई अतिवादी नहीं है। रावण, कंस को भी अपनी व्यवस्था पर गर्व था। पूरे पुराण रावण, कंस अथवा इसी प्रकार के देव-दानव संघर्ष की कथा से भरे पड़े हैं। देव-दानव संघर्ष भारतीय चिंतन परम्परा में दैवी एवं आसुरी सम्पदा का संघर्ष है।[5] प्रत्येक काल में दैवी एवं आसुरी प्रवृत्तियाँ रहती है। दैवी एवं आसुरी संपदा के परस्पर गुणानुपात ही युग व्यवस्था के परिणाम हैं। यह युग कलियुग है। कलियुग, आसुरी अधिक अथवा दैवी सम्पदा पर आसुरी सम्पदा के वर्चस्व का परिणाम है। इस प्रकार वर्तमान में दैवी सम्पदा का प्रतिनिधित्व करने वाले भारत अथवा पूरब पर पश्चिमी अथवा आसुरी सम्पदा का वर्चस्व कोई नया नहीं है।

वर्तमान में दैवी एवं आसुरी सम्पदा[6] युक्त शिक्षा व्यवस्था अपनी यात्रा में है। भारतीय समाज में शिक्षा के कई सोपान हैं। परम्परागत संस्कृत शिक्षा जो, संस्कृत संस्थाओं में दी जा रही है, वह अभी भी परमार्थवादी एवं दैवी सम्पदा का केन्द्र है। इसके विपरीत आधुनिक शिक्षण संस्थानों में दी जा रही शिक्षा का अधिक भाग आसुरी सम्पदा युक्त है। लेकिन इस पश्चिमी या आसुरी शिक्षा से शिक्षित मनुष्य को आत्मसंतोष नहीं मिलने के कारण वह दैवी संपदा युक्त शिक्षा अथवा ज्ञान की ओर भागता है, जिसमें योग, ध्यान, समाधि आदि की शिक्षा है। यह देखा जाता है कि बड़े-बड़े पदों पर बैठे, काफी अधिक वेतन पाने वाले, अपने पद, वेतन को छोड़कर अध्यात्म की ओर क्यों भाग रहे हैं? इसका उत्तर हमें पाना होगा। इसका उत्तर है दैवी सम्पदा का आकर्षण एवं श्रेष्ठता। पश्चिम में भी भौतिकवादी शिक्षा एवं जीवन से मुक्त होकर बड़ी संख्या में लोग इस्कान, प्रजापिता ब्रह्मकुमारी एवं रामकृष्ण मिशन आदि से जुड़ रहे है, लेकिन इस सब के मध्य यह आवश्यक है कि शिक्षा के लक्ष्य पर बात करें। भारतीय शिक्षा का लक्ष्य दैवी सम्पदा युक्त है, जबकि पश्चिमी शिक्षा का लक्ष्य आसुरी सम्पदा युक्त है। इन दोनों प्रकार की शिक्षाओं की समन्वय भूमि भारत है क्योंकि मुस्लिम राष्ट्र पश्चिमी शिक्षा के स्थान पर अपनी कुरान एवं शरियत आधारित शिक्षा को केन्द्र में रखे हुए हैं। वहाँ समन्वय हो नहीं सकता। चीन आदि अपनी वैचारिकी के नाम पर पश्चिमी शिक्षा को प्रवेश नहीं दे सकते। इस स्थिति में भारत ही पश्चिमी एवं पूर्व की शिक्षा के समन्वय का केन्द्र बन सकता है और बन भी रहा है। पश्चिम की अपनी हठवादिता में पूरब की शिक्षा को अपने यहाँ समन्वय का अवसर नहीं देगा। इस कारण भारत ही वह एकमात्र देश है जहाँ दैवी एवं आसुरी सम्पदा अथवा पूरब एवं पश्चिम, इस्लाम एवं चीन आदि की शिक्षा का समन्वय हो सकता है और हो भी रहा है।

इस समन्वय को हम पाठ्यक्रम स्तर पर भी देख सकते हैं। भारत भूमि में विकसित ज्ञान अभी भी यहाँ दूसरे दर्जे की श्रेणी में है। पश्चिम का ज्ञान प्रभुत्व युक्त एवं प्रथम दर्जे में और प्रमुख है। अंग्रेजों से पूर्व भारतीय समाज व्यवस्था में शिक्षा आचरण का आधार थी। उसमें मनुष्यता एवं मानवता का संदर्भ था। वह व्यवस्था नष्ट हुई। उसके स्थान पर मैकाले की व्यवस्था प्रभावी हुई। इस सत्य को गांधी जी ने हिन्दी स्वराज्य

5 श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर सं. 2071, दो सौ चौदहवां संस्करण, पृ.118

6 श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर सं. 2071, दो सौ चौदहवां संस्करण, पृ.118

में स्वीकार किया है।[7] यह सत्य है कि मैकाले की शिक्षा नीति ने पूरी भारतीय शिक्षा और समाज को बदल दिया। उसने संस्कृत, फारसी के स्थान पर अंग्रेजी को खड़ा किया। अंग्रेजी के आने से भारतीय समाज में एक नई व्यवस्था कायम हुई। यह नई व्यवस्था, यह थी कि घर और समाज की भाषा से अलग कार्यालय और न्यायालय की भाषा के रूप में अंग्रेजी चल पड़ी। न्यायालय और कार्यालय की भाषा अंग्रेजी बनी। इस प्रकार अंग्रेजी सरकार अथवा शासन की भाषा रही। सरकार के भाग बनने वाले अंग्रेजी परस्त हुए। इस प्रकार भारतीय समाज में अंग्रेजी मानसिकता का समाज खड़ा हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान अंग्रेजी की दासता से मुक्ति का प्रयास प्रारम्भ हुआ और आज भी जारी है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान ही भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं पश्चिमी शिक्षा के मध्य भारतीय परिवेश के अनुरूप शिक्षा में समन्वय का प्रयास भी प्रारम्भ हुआ, यह क्रम अब भी चल रहा है। इस क्रम को और भी गति देने का प्रयास राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में हुआ है। इसमें विश्वविद्यालयी शिक्षा पर अधिक बल है। इस कारण विश्वविद्यालयी व्यवस्था पर भी विचार आवश्यक है।

भारत की परम्परा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की है, लेकिन पश्चिम की परम्परा पूरे विश्व को एक बाजार मानने की है। इसी कारण पश्चिम की शिक्षा व्यवस्था में बाजार प्रमुख है। वहाँ की शिक्षा व्यवस्था में आत्मा नहीं भौतिकता है। इस भौतिकता में ही वहाँ के समाज का जीवन है। अधिक से अधिक सम्पत्ति का अर्जन एवं भोग ही जीवन-मूल्य है। इस जीवन-मूल्य में परिवर्तन पूरब के सम्पर्क से आता है। इस पूरबी सम्पर्क से जीवन में खालीपन धीरे-धीरे भरता है। पश्चिम के खालीपन से पूरब की ओर आकर्षित प्रमुख विभूतियों में भगिनी निवेदिता, श्रीमती एनीबेसेंट, श्री माँ आदि के नाम प्रमुख हैं। इन मनीषियों का आकर्षण प्राचीन भारतीय ज्ञान के प्रति इस कारण नहीं हुआ कि वह प्राचीन है, उनका आकर्षण भारतीय प्राचीन ज्ञान के प्रति इस कारण हुआ कि यहाँ समग्रता है, पूर्णता है तथा आत्मभाव एवं स्वाभाविकता है। इस सबके विकास के मूल में यहाँ की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था रही है। इस प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में गुरुकुलों की परम्परा से विश्वविद्यालयों की परम्परा भी विकसित हुई।

प्राचीन काल में पश्चिम में या यूरोप के देशों में कोई विश्वविद्यालय नहीं थे। यद्यपि महत्वपूर्ण विद्यालय अवश्य थे। 13वीं शताब्दी में इंग्लैंड में आक्सफोर्ड एवं कैंब्रिज विश्वविद्यालय स्थापित हुए। यूरोप में धर्म सुधार आन्दोलन के साथ विश्वविद्यालय के दृष्टिकोंण तथा विस्तार में परिवर्तन हुए। धीरे-धीरे विश्वविद्यालय स्वतन्त्र व्यवस्था से हटकर राज्य व्यवस्था के अंग बन गये।[8]

उक्त से स्पष्ट है कि यूरोप में विश्वविद्यालयों की परम्परा 13वीं ई. सन् में प्रारम्भ हुई। इसके विपरीत भारत में विश्वविद्यालयों की परम्परा काफी पुरानी है। प्राचीन भारत में गांधार देश की राजधानी 'तक्षशिला',

7 गांधी, हिन्द स्वराज्य, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 2002, पृ. 76-80
8 Vishwavidyalay.wikipedia.org

का तक्षशिला विश्वविद्यालय विश्व के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में था। तक्षशिला का संदर्भ ऋग्वेद में भी है। इसका वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी है। भगवान श्रीराम के भाई भरत के पुत्र के पुत्र तक्ष के नाम पर यह नगर बसाया गया। तक्षशिला विश्वविद्यालय की स्थापना 700 ई. पूर्व मानी जाती है। यहाँ 10,500 से अधिक छात्र पढ़ते थे। 60 से अधिक विषय पढ़ाये जाते थे। सिकन्दर के आक्रमण के समय यह संसार का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय होने के साथ-साथ चिकित्सा का सर्वोपरि केन्द्र था। यहाँ चिकित्सा की शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् प्रत्येक छात्र को छः माह का शोध करना पड़ता था। इस शोध में किसी औषधि अथवा जड़ी-बूटी का पता लगाने पर ही उपाधि मिलती थी। शिक्षा की पूर्णता के बाद दीक्षान्त होता था, जिसमें छात्र को समाज सेवा, आचार्य सेवा का व्रत लेना होता था।[9] तक्षशिला के समान प्राचीन भारत में और भी विश्वविद्यालय थे। इन विश्वविद्यालयों में नालंदा, उदयंतपुरी, सोमपुरा, जगद्दल, कांचीपुरम, मणिखेत, पुष्पगिरि, नागार्जुन कोडा, विक्रमशिला, वल्लभी आदि थे।[10] इससे स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षा परम्परा में विश्वविद्यालय शब्द एवं इसके व्यवहार की विश्वविद्यालय शिक्षा व्यवस्था का शुभारम्भ प्राचीन भारत में उस समय हुआ, जब पश्चिम सो रहा था। इस प्रकार पश्चिम से हजारों वर्ष पूर्व भारत में विश्वविद्यालयों की शिक्षण व्यवस्था अस्तित्व में थी, परन्तु मध्ययुगीन दासता एवं ब्रिटिश गुलामी ने भारतीय विश्वविद्यालयों की परम्परा को समाप्त किया तथा उसके उपरान्त आक्सफोर्ड एवं कैंब्रिज की ज्ञान दासता चल पड़ी, जो अभी भी कायम है। इस दासता से उबरने के लिए स्वतन्त्र भारत में शिक्षा नीतियों का दौर चला।

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा नीतिः भारत को स्वतन्त्रता बीसवीं शताब्दी के वर्ष 1947 में मिली। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में ब्रिटिश शासन द्वारा संचालित एवं पोषित विश्वविद्यालय थे। इन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त देश के मुक्ति संग्राम में स्वदेशी शिक्षा की केन्द्र संस्थाओं में प्रमुख विद्यापीठों के अलावा गुरुकुल कांगड़ी जैसी शिक्षा संस्थाएं भी थीं। स्वतन्त्रता के समय ब्रिटिश शासन के विश्वविद्यालयों का भारतीयकरण आवश्यक था। दूसरी ओर विद्यापीठों तथा गुरुकुल कांगड़ी जैसी स्वदेशी संस्थाओं की उपाधियों को विश्वविद्यालयों के समकक्ष बनाना तथा विश्वविद्यालयों के ढाँचे में फिट करना था। यह कार्य प्रशासनिक स्तर पर शिक्षा के सुधार के साथ सम्पन्न हुआ। इस सुधार में राष्ट्रीय आन्दोलन के मूल्यों ने भूमिका निभाई। सुधारों के इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का दौर चला। इस दौर में बीसवीं शताब्दी में दो राष्ट्रीय शिक्षा नीति अस्तित्व में आयी। प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में अस्तित्व में आयी। इस शिक्षा नीति के समय देश की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी थी। दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रधानमंत्री राजीव गांधी के समय में 1986 में आई।[11] इस शिक्षा नीति का नारा था 'Delinking of degree' (डी लिंकिंग आफ डिग्री) अर्थात् डिग्री एवं रोजगार का सम्बन्ध विच्छेद। इस प्रकार अंकों के स्थान पर प्रवेश परीक्षा के माध्यम से उच्च शिक्षा

9 Vishwavidyalay.wikipedia.org

10 Bingchat GPT

11 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, सम्पूर्ण जानकारी, लेखक श्री कृष्ण कुमार

में प्रवेश तथा रोजगार का दौर चला। प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति स्वतन्त्रता के 21 वर्ष बाद तथा भारत का संविधान लागू होने के 18 वर्ष बाद अस्तित्व में आई। द्वितीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लागू होने के बाद 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक भी कोई राष्ट्रीय शिक्षा नीति अस्तित्व में नहीं आयी। देश में नयी शिक्षा नीति अथवा राष्ट्रीय शिक्षा नीति-3 या तीसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता महसूस हो रही थी। इसी क्रम में 2014 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की सरकार ने नयी शिक्षा नीति की दिशा में कार्य प्रारम्भ किया।

इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में तीसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति, परन्तु इक्कीसवीं शताब्दी की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति से 34 वर्ष बाद 2020 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 अस्तित्व में आयी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-3 के लिए पहल 2015 में प्रारम्भ हुई। इसके लिए पूर्व के केबिनेट सचिव टी.एस.आर. सुब्रह्मण्यम की अध्यक्षता में 5 सदस्यीय कमेटी बनायी गयी। इस कमेटी के मसौदे को सरकार ने स्वीकार नहीं किया। सरकार ने इस कार्य के लिए 2017 में अन्तरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरी रंगन की अध्यक्षता में एक समिति बनायी। इस समिति ने राष्ट्रव्यापी विमर्श के पश्चात् 31 मई, 2019 को सरकार के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत किया। सरकार ने इसे 29 जुलाई, 2020 को लागू किया।[12]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के दूसरे पैरे में लिखा है कि भारत द्वारा 2015 में अपनाये गये सतत् विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य-4 (एस.डी.जी.4) में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास एजेंडा के अनुसार विश्व में 2030 तक ''सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्ता युक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवनपर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिये जाने का लक्ष्य है।[13] इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 शिक्षा का लक्ष्य शिक्षा का वैश्वीकरण अथवा वैश्विक शिक्षा है।

इस क्रम में हमें सतत विकास एजेंडा-4 (एस.डी.जी.4) अर्थात् (Sustainable Development Goal-4) सतत विकास लक्ष्य-4 को जानना होगा। वास्तव में सितम्बर, 2015 में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने कुल 17 सतत् विकास लक्ष्य तय किये। इन 17 सतत् विकास लक्ष्यों में से एक है एस.डी.जी.-4. इस एस.डी. जी.-4 को 2030 तक पूर्ण करना है। एस.डी.जी.-4 में दस लक्ष्य हैं जिन्हें 11 संकेतों द्वारा मापा जाता है। इसमें भी 7 परिणाम लक्ष्य हैं। (1) निःशुल्क प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, (2) गुणवत्ता पूर्ण पूर्व माध्यमिक शिक्षा, (3) किफायती तकनीकी, व्यावसायिक एवं उच्च शिक्षा, (4) कौशलयुक्त लोगों की संख्या में वृद्धि (5) शिक्षा में सभी भेदभावों की समाप्ति, (6) सार्वभौमिक साक्षरता और संख्यात्मकता के साथ सतत विकास एवं (7) वैश्विक नागरिकता के लिए शिक्षा। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए तीन साधन सुझाये गये- समावेशी एवं सुरक्षित स्कूलों का निर्माण, विकासशील देशों के लिए उच्च शिक्षा छात्रवृत्तियों का विस्तार एवं विकासशील देशों में योग्य शिक्षकों की आपूर्ति।[14]

12 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, सम्पूर्ण जानकारी, लेखक श्री कृष्ण कुमार

13 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 2020, पृ. 3

14 Satat Vikas Laksh wikipedia.org

उक्त से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-3 के लिए 2015 में पूर्व कैबिनेट सचिव टी.एस.आर. सुब्रह्मण्यम् की अध्यक्षता में गठित समिति की रिपोर्ट को सरकार द्वारा निरस्त कर 2017 में अन्तरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरी रंगन की अध्यक्षता में नई समिति गठित करने के पीछे का रहस्य सम्भवतः एस.डी. जी.-4 था अर्थात् कैबिनेट सचिव की रिपोर्ट एस.डी.जी.-4 के मानकों के अनुरूप नहीं थी। वास्तव में अन्तरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरी रंगन समिति की रिपोर्ट- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का ढांचा संयुक्त राष्ट्रसंघ के एस.डी.जी.-4 के अनुरूप है।[15] इस एस.डी.जी.-4 में विश्व नागरिक तैयार करने का भी लक्ष्य है। इससे प्राचीन भारतीय अवधारणा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के लक्ष्य को साकार करने का प्रयास है। इस प्रकार एस.डी. जी.-4 आधारित राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 प्राचीन भारतीय मूल्यों की ओर मुड़ती शिक्षा व्यवस्था का स्पष्ट उदाहरण एवं प्रमाण है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, पूर्व की राष्ट्रीय शिक्षा नीति दो से 34 वर्ष बाद जारी हुई। इसके अन्तर्गत मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय किया गया। इस परिवर्तन के बाद पहले शिक्षा मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक थे। इस नीति के लिए गठित कमेटी के अध्यक्ष के. कस्तूरी रंगन सहित कुल आठ सदस्य थे। इस कमेटी ने 31 मई, 2019 को अपनी रिपोर्ट केन्द्र सरकार को सौंपा और सरकार ने 29 जुलाई 2020 को इसे लागू किया। शिक्षा नीति-2020, 4 भागों एवं 27 अध्यायों में विभक्त है। इसके अन्तर्गत एम. फिल कोर्स समाप्त किया गया है। 3 से 18 वर्ष के बच्चों के लिए पाठ्यक्रम व्यवस्था पुनर्गठित की गयी है। इस पुनर्गठन का नया ढाँचा- 5+3+3+4= (अर्थात्) 3 वर्ष का प्री-स्कूल+2 वर्ष की प्रथम एवं द्वितीय कक्षा+ 3 वर्ष 3 से 5 कक्षा-3 वर्ष 6 से 8 कक्षा + 4 वर्ष की 9 से 12 कक्षा की व्यवस्था है। 3 वर्ष की अवस्था में प्री-स्कूल व्यवस्था प्रारम्भ होगी तथा 18 वर्ष की अवस्था में कक्षा 12 (सेकेन्डरी) की उपाधि प्राप्त होगी। प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में होगी। इस चरण में कला और साइंस वर्ग जैसा भेद नहीं होगा। यह परिवर्तन इसके बाद की कक्षा में होगा। 9वीं से 12वीं कक्षा की परीक्षा सेमेस्टर आधार पर होगी। बोर्ड परीक्षा को सरल बनाने कोचिंग व रटने की पद्धति से मुक्ति की व्यवस्था है। शिक्षणेत्तर गतिविधियों के भी अंक जुड़ेंगे। प्रारम्भ से ही रोजगार परकता, कौशल एवं भाषा ज्ञान पर बल दिया गया है। प्रायोगिक कार्य भी प्रमुख होगा।

उक्त के साथ शिक्षा के भारतीयकरण पर भी बल दिया गया है। मूल्यांकन प्रणाली में ग्रेडिंग व्यवस्था को मान्य किया गया है। सभी बच्चों की शिक्षा का भी उल्लेख है। स्कूल स्तर पर तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, प्राकृत, पाली, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं की शिक्षा का उल्लेख है। हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा की शिक्षा भी महत्वपूर्ण रहेगी। कम्प्यूटर ज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। स्कूल परिसर को व्यवस्थित

15 Satat Vikas Laksh wikipedia.org

करने एवं 30 विद्यालयों का क्लस्टर बनाने की व्यवस्था की गयी है। पढ़ाई के साथ खेल, शैक्षणिक पर्यटन पर भी बल दिया गया है।[16]

उच्च शिक्षा में भी परिवर्तन की व्यवस्था राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में शिक्षण अध्ययन व्यवस्था में व्यापक सुधार की संस्तुति की गयी है। स्नातक शिक्षा को तीन के स्थान पर चार वर्ष करने का सुझाव है। स्नातक स्तर पर यह व्यवस्था है कि छात्र यदि किसी कारणों से अध्ययन के दौरान पढ़ाई छोड़ता है तो उसे, एक वर्ष पूर्ण करने पर प्रमाण पत्र, दो वर्ष पूर्ण करने पर डिप्लोमा तथा तीन/चार वर्ष पूर्ण करने पर स्नातक उपाधि प्राप्त होगी। इसके लिए न्यूनतम क्रेडिट अवश्य होगी। अध्ययन के मध्य में अध्ययन छोड़ने वाले छात्र को कुछ वर्षों के बाद पुनः अध्ययन प्रारम्भ करने की सुविधा प्राप्त है। परीक्षा सेमेस्टर प्रणाली से होगी और मूल्यांकन ग्रेडिंग के आधार पर होगा। प्रश्नपत्र का अध्यापन भार क्रेडिट के आधार पर होगा। 01 क्रेडिट प्रति सप्ताह 60 मिनट की कक्षा के मानक से होगा। 80 से 120 क्रेडिट का पाठ्यक्रम होगा।

उक्त के साथ-साथ कालेजों को स्वायत्त बनाने एवं शिक्षा पर बजट व्यय बढ़ाने का भी सुझाव है। उच्च शिक्षा के स्तर पर भारतीय ज्ञान के साथ-साथ रोजगारपरक शिक्षा, मूल्यात्मक शिक्षा एवं अनुसंधान पर विशेष बल है। गरीब छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था एवं विकलांगों की शिक्षा के लिए विभिन्न प्रकार की संस्तुति की गयी है। इतना ही नहीं एक विषयी विश्वविद्यालयों को बहुल विषयी बनाने पर बल दिया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में कला, मानविकी, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान एवं वाणिज्य के मध्य स्नातक स्तर पर बहुविषयिता अथवा सम्मिश्रण की व्यवस्था है। कला स्नातक, विज्ञान एवं विज्ञान स्नातक, कला तथा वाणिज्य विषयों को माइनर विषय के रूप में अध्ययन करेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विविध कौंसिलों द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों जैसे- विधि (बार कौंसिल) चिकित्सा (मेडिकल कौंसिल), फार्मेसी (फार्मेसी कौंसिल), द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों में सुधार एवं परिवर्तन की संस्तुति की गयी है परन्तु उसके परिवर्तन का ढाँचा वर्णित नहीं है।[17]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में प्रौढ़ शिक्षा एवं जीवनपर्यन्त शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा पर बल देने के साथ-साथ आनलाइन एवं डिजिटल शिक्षा की संस्तुति की गयी है। इसी के साथ-साथ भारतीय कला, संस्कृति एवं भाषा आदि के संवर्धन की व्यवस्था है। यह विवेचन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तीसरे भाग में है।[18]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के चौथे भाग में इसके क्रियान्यवन के लिए विभिन्न समितियों एवं बोर्डों के गठन

16 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, उक्त, पृष्ठ-1-48

17 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, उक्त, पृष्ठ-52-79

18 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, उक्त, पृष्ठ- 81-95

का सुझाव है। इसके लिए केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड बनाने एवं सकल घरेलू उत्पादन का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने की संस्तुति है।[19]

उक्त के अलावा देश में शोध को बढ़ावा देने के लिए नेशनल रिसर्च फाउंडेशन (NRF) स्थापित करने तथा रु. 20,000 करोड़ का वार्षिक अनुदान देने की संस्तुति है। शोधकर्ता, सरकार और उद्योग के मध्य अच्छे सम्बन्ध होने चाहिए। इसी के साथ यह भी संस्तुति है कि पुरस्कार एवं सेमिनार के माध्यम से उत्कृष्ट शोध को मान्यता देने की व्यवस्था हो।[20]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में तीन प्रकार के उच्च शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था है। इनमें- 1-अनुसंधान विश्वविद्यालय (अनुसंधान और शिक्षण), 2-शिक्षण विश्वविद्यालय (अनुसंधान के साथ मुख्यतः शिक्षण कार्य) एवं 3-स्वायत्त डिग्री देने वाले कालेज (शिक्षण पर विशेष ध्यान) सम्मिलित होंगे। मिशन नालंदा एवं तक्षशिला के साथ प्रत्येक जिले में एक उच्च गुणवत्तायुक्त श्रेष्ठ शिक्षण संस्थान की स्थापना का लक्ष्य है। भाषायी शिक्षण के भी संस्थान होंगे। विविधतायुक्त बी.एड. उपाधि इसकी संस्तुति का भाग है। कृषि शिक्षा में भी सुधार पर बल है। उक्त के साथ-साथ समय-समय पर शिक्षण संस्थाओं के मूल्यांकन एवं राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षण संस्थाओं/विश्वविद्यालयों के मूल्यांकन पर बल दिया गया है। शिक्षण संस्थाओं के वित्तीय नियमन एवं शुल्क आदि के नियमन के लिए संस्थाओं के गठन पर बल दिया गया है।[21]

निष्कर्षात्मक विवेचनः बदलते वैश्विक परिवेश में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता थी। वैसे भी 21वीं शताब्दी के एक दशक में कोई शिक्षा नीति नहीं आयी जबकि वैश्विक एवं राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा व्यवस्था में कई परिवर्तन आ चुके थे। इसी कारण नयी शिक्षा नीति में एक ओर एस.डी.जी.-4 के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था को प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया है तो दूसरी ओर उसके भारतीयकरण पर भी बल दिया गया है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था को इस प्रकार का बनाने का प्रयास किया गया है कि एक विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय का विद्यार्थी भारत ही नहीं भारत के बाहर भी क्रेडिट ट्रांसफर के माध्यम से एक संस्था से दूसरी संस्था में प्रवेश ले सकेगा। शिक्षा को ज्ञान मूलक एवं शोध मूलक बनाने के साथ-साथ रोजगार देने वाली बनाने का प्रयास है। उक्त शिक्षा व्यवस्था में वैश्विक स्तर पर निकटता एवं शिक्षा में सुधार तथा गुणवत्ता विकास का प्रयास है।

उक्त शिक्षा नीति में भले ही परम्परागत संस्कृत शिक्षा एवं मदरसों की शिक्षा की बात प्रत्यक्षतः नहीं है, परन्तु उनका भी ढांचा 5+3+3+4 का ही होगा। उन्हें भी 3 वर्ष से 18 वर्ष के मध्य सेकेन्डरी समकक्ष उपाधि उत्तर मध्यमा आदि देनी होगी। इसी प्रकार स्नातक स्तर पर एक वर्ष पर प्रमाण पत्र, दो वर्ष पर

19 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, उक्त, पृष्ठ-99-103

20 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, सम्पूर्ण जानकारी, उक्त

21 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, सम्पूर्ण जानकारी, उक्त

डिप्लोमा एवं तीन अथवा चार वर्ष पर शास्त्री उपाधि देनी होगी। यदि संस्कृत विश्वविद्यालय ऐसा नहीं करते तो उनकी उपाधि बी.ए., बी.एस-सी. आदि के समकक्ष नहीं होगी। यही व्यवस्था उर्दू की संस्थाओं को भी करनी होगी। नई शिक्षा नीति में अल्पसंख्यक संस्थाओं के परिवर्तन आदि का उल्लेख प्रत्यक्षतः भले नहीं है, लेकिन उन्हें भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप बदलना होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के मार्ग में बाधाएँ भी कम नहीं है। इसे लागू करने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन एवं प्रशिक्षित तथा गुणवत्ता युक्त शिक्षकों की कमी प्रमुख बाधा है। वर्तमान समय में ग्रामीण शिक्षण संस्थाओं, विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय तथा नगरीय शिक्षण संस्थाओं-विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में शिक्षा, संसाधन आदि की भिन्नता का अंतराल इतना अधिक है कि, उसमें समानता के लिए प्रयास भी समय की आवश्यकता है। वर्तमान समय में गैर सरकारी स्कूलों, विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ाने वाले शिक्षकों को एक कुशल श्रमिक अथवा करीगर से भी कम वेतन मिलता है। ऐसी स्थिति में इन शिक्षकों में स्तरीय शिक्षा का भाव कैसे उत्पन्न होगा। इतना ही नहीं शिक्षा के पवित्र मंदिर-विश्वविद्यालयों में कुलपति, प्रतिकुलपति के पदों पर सरस्वती पुत्रों को पीछे छोड़कर लक्ष्मी पुत्रों की बढ़ती संख्या एवं वर्चस्व से उपजा भ्रष्टाचार राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के मार्ग में बड़ी बाधा है। इसी प्रकार टीनशेड/झोपड़पट्टी में चलने वाले विद्यालयों एवं वातानुकूलित विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य के अन्तराल भी नयी शिक्षा नीति के मार्ग में बाधा है, क्योंकि क्रेडिट ट्रांसफर में विद्यालय /विश्वविद्यालय के मध्य भिन्नता भी इसे प्रभावित करेगी। इसी के साथ बहुभाषी एवं विविधतायुक्त राष्ट्र में एक समान व्यवस्था उत्पन्न करना कठिन एवं चुनौतीपूर्ण है।

उक्त के साथ-साथ वर्तमान में एक बड़ी आबादी को प्रतिमाह न्यूनतम दर पर अथवा निःशुल्क अनाज देने की व्यवस्था वाले समाज में नालंदा एवं तक्षशिला जैसी व्यवस्था किस प्रकार होगी यह भी एक प्रश्न है? राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की व्यवस्था में एक बाधा उच्च शिक्षण संस्थानों में छात्रों द्वारा उत्पन्न अव्यवस्था एवं दबाव भी है। इनसे मुकाबला करके ही हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 को व्यावहारिक धरातल पर उतार सकते हैं। उक्त सबके बाद भी यह आशा है कि जिस विश्वास एवं निश्चय के साथ राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 अस्तित्व में आई है, उसी निश्चय एवं दृढ़ विश्वास के साथ वह प्रभावी भी होगी। यदि यह नीति पूर्णतः लागू हो सके तो निश्चित ही भारतीय शिक्षा व्यवस्था पुनः अतीत के श्रेष्ठ मूल्यों को प्राप्त करेगी तथा विश्व मानवता का कल्याण होगा।

●●●

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और स्कूली शिक्षा की चुनौतियां

डॉ.चन्द्र मौलि त्रिपाठी[1]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू हुए तीन वर्ष बीत गए। इन तीन वर्षों में इसके प्रावधानों को माध्यमिक शिक्षा में कितना और किस रूप में लागू किया गया, कौन से जरूरी प्रावधान अभी तक ठंडे बस्ते में पड़े हैं, इनके लागू होने में क्या समस्याएँ आड़े आ रही हैं, इन सभी बिन्दुओं का तथ्यात्मक विश्लेषण इस शोध आलेख का विषय है। इसे निम्नांकित उपशीर्षों में बाँटकर देखा जा सकता है।

1. माध्यमिक विद्यालयों हेतु शिक्षा नीति : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वर्तमान शिक्षा नीति के लक्ष्य तथा उद्देश्य
2. माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा नीति के क्रियान्वयन की स्थिति
3. क्रियान्वयन में अवरोध
4. नीति से होने वाले परिवर्तन
5. नीति के कार्यान्वयन में विभिन्न हित धारकों के बीच सामंजस्य

माध्यमिक विद्यालयों हेतु शिक्षा नीति : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय शिक्षा का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। गुरुकुल से लेकर मध्यकाल तक शिक्षा व्यवस्था स्वायत्त, राज्य पोषित तथा समाज आश्रित थी। अंग्रेजों के आने पर शिक्षा को न केवल राज्य आश्रित बना दिया गया अपितु लार्ड मैकाले द्वारा उसके आधुनिकीकरण के नाम पर विदेशी भाषा संस्कृति लादने का सुनियोजित प्रबन्ध किया गया। स्वतन्त्रता के बाद जिन आयोगों और समितियों को शिक्षा के सुधार का अवसर मिला उन्होंने उसके शरीर में तो थोड़ा बहुत परिवर्तन किया परन्तु उसकी आत्मा अपरिवर्तित रही। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था के परिवर्तन में योगदान करने वाले आयोगों के द्वारा दिए गए सुझाव से स्वतंत्र भारत में शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण दिशा मिली। माध्यमिक शिक्षा में सुधार का सबसे पहला प्रयास स्वतंत्रता के बाद सन् 1952-53 में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन था। माध्यमिक शिक्षा के संबंध में इस आयोग ने विस्तृत अध्ययन किया। 23 सितंबर 1952 को डॉक्टर लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठित इस आयोग में अन्य नौ सदस्य थे। इस आयोग को मुख्यतया चार बिंदुओं पर अपने

1 स्नातकोत्तर शिक्षक, केन्द्रीय विद्यालय संगठन

सुझाव देने थे। पहला माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, संगठन तथा विषयवस्तु। दूसरा इसका प्राथमिक बेसिक तथा उच्च शिक्षा से संबंध। तीसरा विभिन्न प्रकार के माध्यमिक स्कूलों में परस्पर संबंध तथा चौथा अन्य समस्याएँ। इस आयोग ने 29 अगस्त सन् 1953 को 240 पृष्ठों का अपना प्रतिवेदन भारत सरकार को प्रस्तुत किया। इसके बाद भारत सरकार ने शिक्षा के पुनर्गठन पर व्यापक रूप से सोचने समझने और पूरे देश के लिए एक समान शिक्षा नीति बनाने के लिए सन् 1964-66 में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन किया जिसका अध्यक्ष डॉक्टर दौलत सिंह कोठारी को बनाया गया। इसमें 17 सदस्य थे तथा इसे कोठारी आयोग के नाम से भी जाना जाता है। इस आयोग ने विस्तारपूर्वक शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकताओं का अध्ययन किया और 29 जून 1966 को अपना प्रतिवेदन भारत सरकार को प्रेषित किया। यह 700 पृष्ठों का एक विस्तृत दस्तावेज था, जिसमें शिक्षा को उन्नति के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में विकसित करने के लिए उसके राष्ट्रीय उद्देश्यों को बताया गया और पूरे देश में एक समान शिक्षा संरचना लागू करने की बात कही गई। आयोग ने अध्यापक-प्रशिक्षण, शैक्षिक समानता, स्कूल शिक्षा के विस्तार, पाठ्यक्रम, शिक्षण-पद्धति, निरीक्षण तथा इससे जुड़े हुए अन्य सुझाव भी विस्तृत रूप से दिए। इन दोनों आयोगों के सुझावों को ध्यान में रखते हुए 24 जुलाई सन् 1968 को भारत सरकार ने पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित किया। इसमें जिन मूलभूत बिंदुओं को समाहित किया गया वे थे- राष्ट्रीय शिक्षा का महत्व, केंद्र और राज्य का संयुक्त उत्तरदायित्व, शिक्षा पर केंद्रीय बजट का 6% खर्च किया जाना, 10+2+3 प्रारूप की शिक्षा व्यवस्था लागू करना, 6 से 14 आयु वर्ग के लिए निशुल्क शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा में त्रिभाषा सूत्र लागू करना, परीक्षा प्रणाली में सुधार इत्यादि। राष्ट्र की अपेक्षा के अनुरूप 18 वर्षों बाद 'शिक्षा की चुनौती-नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य' नाम से शिक्षा व्यवस्था के सुधार हेतु दिए गए 68 पृष्ठों के दस्तावेज को आधार बनाकर मई 1986 में भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति-1986 को जारी कर दिया। इस नीति में शैक्षिक अवसरों की समान उपलब्धता सुनिश्चित करना, शिक्षा प्रणाली 10+2+3 लागू करना, तकनीकी प्रबंधन में सुधार, अध्यापकों के उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना, पाठ्यक्रमों का नवीनीकरण, अध्यापक शिक्षा में सुधार, शैक्षिक निवेश को बढ़ाना, नवोदय विद्यालय खोलना, स्वायत्तता को बढ़ाना और कंप्यूटर ज्ञान जैसे विषयों को समाहित किया गया।

एक लंबे अंतराल, 34 वर्षों के उपरांत भारत सरकार ने यह महसूस किया की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। आज के बदलते परिवेश में भारत की सांस्कृतिक धरोहर को सुसमृद्ध करते हुए आर्थिक दृष्टिकोण से विश्व की प्रमुख तीन अर्थव्यवस्थाओं में स्थान को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉक्टर के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में जून 2017 में 'कस्तूरी-रंगन-समिति' का गठन किया। इस समिति ने मई 2019 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा कैबिनेट को प्रस्तुत किया तथा केंद्र सरकार ने 34 वर्ष पुरानी शिक्षा नीति-1986 को प्रतिस्थापित करते हुए 'राष्ट्रीय शिक्षा

नीति-2020' को 29 जुलाई 2020 में लागू कर दिया। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 21 वीं शताब्दी की भारत की पहली शिक्षा नीति है। 103 पृष्ठों की इस शिक्षा नीति का लक्ष्य घोषित करते हुए कहा गया है- 'इस शिक्षा नीति का लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत के पारंपरिक और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्य, जिनमें एसडीजी 4 शामिल है, के संयोजन में शिक्षा व्यवस्था, उसके नियम और गवर्नेंस सहित सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमताओं के विकास पर विशेष जोर देती है। यह नीति इस सिद्धांत पर आधारित है कि शिक्षा से न केवल साक्षरता और संख्या ज्ञान जैसी बुनियादी क्षमताओं के साथ-साथ उच्चतर स्तर की तार्किक और समस्या प्रधान संबंधी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए बल्कि नैतिक सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का विकास होना आवश्यक है।[2] इस प्रकार इस शिक्षा नीति में व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है तथा व्यक्ति के विकास से ही राष्ट्र का विकास सुनिश्चित होता है इस तथ्य पर भी बल दिया गया है।

इस शिक्षानीति के अंतर्गत भारत की प्राचीन ज्ञान विज्ञान तथा सनातन परम्परा का भी ध्यान रखा गया है, इसके परिचय खण्ड में इस पर विचार करते हुए कहा गया है कि ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि पूर्ण-आत्मज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी जैसे प्राचीन भारत के विश्वस्तरीय संस्थानों ने अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षण और शोध के ऊँचे प्रतिमान स्थापित किए थे और विभिन्न पृष्ठभूमि और देशों से आने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों को लाभान्वित किया था। इसी शिक्षा व्यवस्था ने चरक, सुश्रुत आर्यभट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणि दत्ता, माधव, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगला, शंकरदेव, मैत्रेयी, गार्गी और थिरुवल्लुवर जैसे अनेकों महान विद्वानों को जन्म दिया। इन विद्वानों ने वैश्विक स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों जैसे गणित, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान और शल्य चिकित्सा, नागरिक अभियांत्रिकी, भवन निर्माण, जलपोत निर्माण और दिशा ज्ञान, योग, ललित कला, शतरंज इत्यादि में प्रामाणिक रूप से मौलिक योगदान किये। भारतीय संस्कृति और दर्शन का विश्व में बड़ा प्रभाव रहा है। वैश्विक महत्व की इस समृद्ध विरासत को आने वाली पीढ़ियों के लिए न सिर्फ सहेज कर संरक्षित रखने की आवश्यकता है बल्कि हमारी शिक्षा व्यवस्था द्वारा उसपर शोध कार्य होने चाहिए, उसे और समृद्ध किया जाना चाहिए और नए-नए उपयोग भी

2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 पृष्ठ - 4, 5

सोचे जाने चाहिए।

इसी प्रकार 'राष्ट्रीय फोकस समूह'[3] के आधार पत्र में 'शिक्षा के लक्ष्य' निर्धारित करते हुए मुख्य रूप से निम्न नौ बिंदुओं पर चर्चा की गई है :

1. स्कूली शिक्षा बच्चे के जीवन में एक सायास तथा कमोबेश वाह्य हस्तक्षेप है। रवीन्द्रनाथ टैगोर को उद्धृत करते हुए कहा गया है 'अचानक मैंने अपनी दुनिया को अपने आसपास से सिमटते पाया। उसका स्थान लकड़ी की बेंचों तथा सीधी खड़ी दीवारों ने ले लिया, जो मुझे अंधे की तरह खाली घूर-घूरकर देख रही थी।'[4] शायद स्कूलों को अपनी खुद की चारदीवारी होनी चाहिए क्योंकि स्कूल के जीवन को आसपास के समुदाय जीवन से मिलाया नहीं जा सकता, लेकिन ये चारदीवारियाँ अवरोधक नहीं होनी चाहिए। उन्हें बच्चों के अपने घर और समुदाय के अनुभव तथा स्कूल के अनुभव को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी विकसित करने में मददगार होना चाहिए।

2. आत्मज्ञान, आत्म-अनभिज्ञता और आत्मवंचन को दूर करता है। दूसरे से धोखा खाना बुरा है, लेकिन स्वयं से धोखा खाना उससे भी ज्यादा बुरा है। शिक्षा स्वयं को खोजने, स्वयं की सच्चाई को जानने की निरंतर प्रक्रिया होनी चाहिए। यह जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है।

3. बच्चों और किशोरों को इस बात का विश्वास दिलाने की आवश्यकता है कि सदाचार का जीवन अधर्म और दुष्टता से बेहतर है। नैतिकता से युक्त सत्य से सिंचित मार्ग ही श्रेष्ठता का है। इसके लिए सम्पूर्ण शिक्षा को हमें मूल्यपरक बनाना होगा।

4. सांस्कृतिक विविधता का सम्मान। हमारे देश के भिन्न-भिन्न स्थानों और भिन्न-भिन्न वर्गों में भाषा, भोजन और वेश की जो भिन्नता है उसके प्रति सम्मान की भावना होनी चाहिए।

5. वैयक्तिक अंतर के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण। प्रत्येक बच्चे में अपनी क्षमताएँ और कौशल होते हैं, जिन्हें स्कूली परिवेश में पर्याप्त मान्यता मिलनी चाहिए।

6. ज्ञानार्जन की एकात्मक संकल्पना के स्थान पर उसके भिन्न-भिन्न तरीकों को मान्यता देना। शिक्षा में इसका निहितार्थ यह होगा कि जिस प्रकार प्रयोगशालाओं में प्रयोग कर या निगमात्मक चिंतन के द्वारा मनुष्य ज्ञान की खोज करता है उसी प्रकार साहित्यिक व कलात्मक रचनात्मकता भी मनुष्य के ज्ञानात्मक उपक्रम का एक हिस्सा होती है। यह हमें सच्चाई से साक्षात्कार कराने में सक्षम बनाती है, जो एक वैज्ञानिक अन्वेषण नहीं करा पाता।

7. शिक्षा को मुक्त करने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए अन्यथा अब तक जो कुछ भी

3 'शिक्षा के लक्ष्य', एन.सी.ई.आर.टी., प्रकाशन-2007

4 रवीन्द्र नाथ टैगोर - 'माई स्कूल' इंग्लिश राइटिंग ऑफ टैगोर, खंड 2, संपादक, शिशिर कुमार दास, साहित्य अकादेमी, 1996

कहा गया है, वह अर्थहीन हो जायेगा। शिक्षा की प्रक्रिया को सभी प्रकार के शोषण और अन्याय से मुक्त होना चाहिये।

8. स्कूली शिक्षा में सौन्दर्यात्मक रूप से सुखद वातावरण का सृजन होना चाहिए जिससे बच्चे सक्रिय भागीदारी करें।

9. प्रत्येक बच्चे में राष्ट्र के प्रति गर्व की भावना का विकास किया जाना चाहिए, परंतु कोई व्यक्ति किसी चीज के लिए तभी गर्व का भाव रखा सकता है जब वह स्वयं उसकी उपलब्धि हो या वह उस व्यक्ति, संस्था से बड़े निकट से जुड़ा हो जिसकी वह उपलब्धि है। अगर हम ईश्वर और प्रकृति के प्रति अंतरंगता का अनुभव करते हैं तो धरती, आकाश तथा यहाँ तक कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड के प्रति गर्व महसूस कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जिन परिवर्तनों को लागू करने की आवश्यकता है उस पर बड़ी बारीकी से अध्ययन कर सुझाव दिए गए हैं। यहाँ व्यष्टि से समष्टि की तरफ उन्मुख भारतीय चिंतन परंपरा का ध्यान रखा गया है। शिक्षा के इन लक्ष्यों से विद्यार्थियों के आंतरिक और वाह्य दोनों प्रकार की प्रगति सुनिश्चित की जा सकती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के मूलभूत सिद्धांत जिनसे शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल बदलाव की उम्मीद की जाती है तथा जो व्यक्तिगत और संस्थान दोनों का मार्गदर्शन करेंगे, वे कुल बाइस हैं। हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास करना, बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना, लचीलापन, कला और विज्ञान के बीच,पाठ्यक्रम तथा पाठ्येतर गतिविधियों के बीच, व्यावसायिक और शैक्षणिक धाराओं आदि के बीच कोई स्पष्ट अलगाव न हो, सभी ज्ञान की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए एक बहु-विषयक दुनिया के लिए विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला, मानविकी और खेल के बीच एक बहु-विषयक और समग्र शिक्षा का विकास, अवधारणात्मक समझ पर ज़ोर, रचनात्मकता और तार्किक सोच, नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्य, बहुभाषिकता, जीवन कौशल, सीखने के लिए सतत मूल्यांकन पर ज़ोर, तकनीकी के यथासंभव उपयोग पर ज़ोर, विविधता और स्थानीय परिवेश के लिए एक सम्मान, सभी शैक्षिक निर्णयों की आधारशिला के रूप में पूर्ण समता और समावेशन, स्कूली शिक्षा से उच्चतर शिक्षा तक सभी स्तरों के शिक्षा पाठ्यक्रम में तालमेल, शिक्षकों और संकाय को सीखने की प्रक्रिया का केंद्र मानना, शैक्षिक प्रणाली की अखंडता,पारदर्शिता और संसाधन कुशलता, हल्का लेकिन प्रभावी नियामक ढाँचा, स्वायत्तता, सुशासन, सशक्तिकरण सुनिश्चित करना, गुण-वत्तापूर्ण शिक्षा और विकास के लिए उत्कृष्ट स्तर का शोध, शैक्षिक विशेषज्ञों द्वारा निरंतर अनुसंधान और नियमित मूल्यांकन के आधार पर प्रगति की सतत समीक्षा, भारतीय जड़ों और गौरव से बंधे रहना, शिक्षा एक सार्वजनिक सेवा, इसे प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार मानना, एक मजबूत जीवंत सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त निवेश हेतु सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहन और सुविधा प्रदान करना। इस शिक्षा नीति

की अपनी एक दृष्टि भी है, जिसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यह शिक्षा नीति भारतीय मूल्यों से विकसित वह शिक्षा प्रणाली है जो सभी को उच्च स्तरीय गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराके और भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाकर भारत को एक जीवंत और न्यायसंगत ज्ञान समाज में बदलने के लिए प्रत्यक्ष रूप से योगदान करेगी। इस नीति में परिकल्पित है कि हमारे संस्थानों की पाठ्यचर्या और शिक्षाविधि छात्रों में अपने मौलिक दायित्वों और संवैधानिक मूल्यों, देश के साथ जुड़ाव और बदलते विश्व में नागरिक की भूमिका तथा उत्तरदायित्वों की जागरूकता उत्पन्न करे। छात्रों में भारतीय होने का गर्व न केवल विचार में बल्कि व्यवहार, बुद्धि और कार्यों में भी, साथ ही ज्ञान, कौशल, मूल्यों और सोच में भी प्रदर्शित होना चाहिए, जो मानवाधिकारों, स्थायी विकास और जीवनयापन तथा वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो ताकि सही मायने में वैश्विक नागरिक बन सकें।

वैश्विकता के इस युग में जहाँ 'विश्व एक नीड' की संकल्पना कार्य कर रही है, वसुधा ही कुटुंब के समान परिकल्पित हो रही है, वहाँ इस प्रकार के शैक्षिक लक्ष्य और दृष्टि द्वारा ही हम भारत को विश्वगुरु के पद पर अभिषिक्त करने में समर्थ हो सकते हैं। अस्तु अपने दूरदर्शी उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यह शिक्षा नीति एक सुनिश्चित मार्ग को आलोकित कर रही है।

माध्यमिक शिक्षा के लिए इस शिक्षा नीति ने व्यापक सुझाव दिए हैं, जिनको लागू कर नए प्रतिमानों को स्थापित किया जा सकता है तथा भारत की भविष्य की जरूरत के अनुकूल तैयारी की जा सकती है। इसमें सबसे पहला बदलाव शिक्षा के नए स्तरों के रूप में दिखता है। अभी तक प्रचलित स्कूली व्यवस्था 10+2 के स्थान पर 5+3+3+4 के प्रारूप को लागू किया जा रहा है। इसमें पहला स्तर फाउंडेशनल है, जिसे दो भागों में विभाजित किया गया है 3+2 यानी तीन साल की उम्र के बच्चों को बाल-वाटिका, आँगनवाड़ी या प्री स्कूल केंद्रों में नामांकित कराया जाएगा, जहाँ वे तीन वर्ष तक अध्ययन करेंगे तथा छह वर्ष की आयु होने पर उन्हें कक्षा एक में प्रवेश दिया जाएगा। इसे पहले प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) के रूप में अलग से आँगनवाड़ी में संचालित किया जा रहा है। चूँकि अभी तक यह स्कूली शिक्षा से अलग रहता था अतएव इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ रहा था तथा इसका पर्याप्त पर्यवेक्षण नहीं हो पा रहा था। इसे देखते हुए अब 'ईसीसीई' स्कूली शिक्षा का अंग बनाया गया।

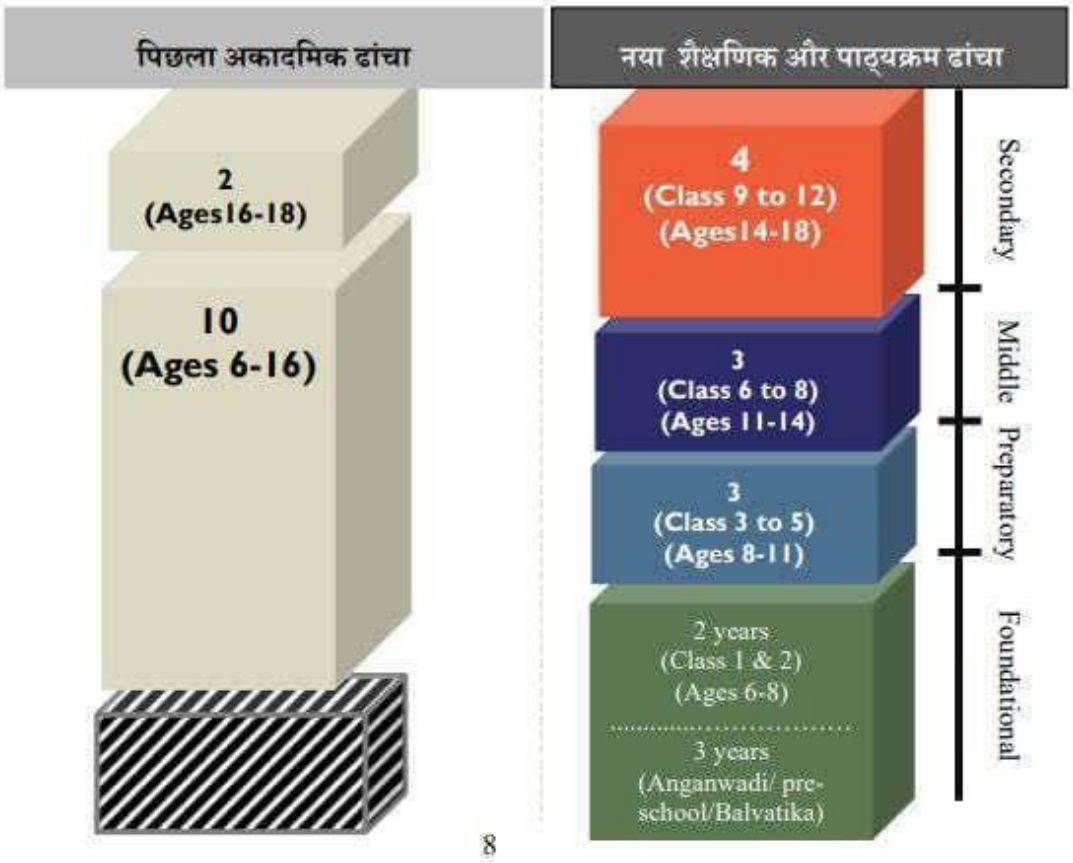

8

यह बदलाव बालकों के मस्तिष्क के विकास पर किए गए अनुसंधानों पर भी आधारित है, जिसमें कहा गया है कि छह वर्ष की आयु तक बच्चों के मस्तिष्क का 85% विकास हो जाता है। इसे लागू करने के लिए एनसीईआरटी ने कैरीकुलम भी जारी कर दिया है तथा विभिन्न शिक्षा बोर्डों को इसके क्रियान्वयन हेतु निर्देशित भी कर दिया है, परंतु सबसे बड़ी चुनौती इस उम्र के बच्चों को घर से बाहर निकालकर बाल-वाटिका तक लाने की है। नई शिक्षा नीति की यह पहल प्राइवेट कांवेंट स्कूल पहले ही चला रहे हैं, जहाँ एल के जी, यू.के.जी., प्रेप आदि नामों से कक्षाएँ संचालित की जा रही हैं। इन कक्षाओं की दशा-दिशा के विषय में कुछ कहना व्यर्थ है, क्योंकि ज्यादातर स्कूल इन्हें धनागम का अच्छा स्रोत मानने लगे हैं और बालमन पर इसके प्रभाव को व्यापकता के साथ जोड़कर देख पाने में असमर्थ रहे हैं। बाल्यावस्था में बच्चों के स्कूली वातावरण का उन्मुक्त, आनंदमय होना और शिक्षक का घर के सदस्य जैसा व्यवहार उनके सीखने तथा स्कूल के प्रति

लगाव में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस बात को रवींद्रनाथ टैगोर के एक अनुभव से समझा जा सकता है, जिसमें एक शिक्षक के विषय में उन्होंने कहा है- 'उसके साथ बच्चों को कभी भी ऐसा नहीं लगा कि वे टीचिंग क्लास तक सीमित थे, उन्हें लगता था कि उनकी पहुँच हर जगह है। वे उसके साथ वसंत ऋतु में जंगल जा सकते थे जहाँ साल के पेड़ फूलों से लदे थे और वहाँ वह उन्हें उत्साह से अपनी पसंदीदा कविताएँ सुनाया करता था।... उसे बच्चों की समझने की शक्ति पर कभी अविश्वास न था। वह जानता था कि बच्चों के लिए अक्षरशः तथा सटीक तौर पर किसी चीज को समझन जरूरी नहीं था, बल्कि जरूरी यह था कि उसके मस्तिष्क को जगा दिया जाए, और इसमें वह सदा सफल रहा। वह अन्य शिक्षकों जैसा न था, केवल पाठ्य पुस्तकों के वाहक। उसने अपने शिक्षण को व्यक्तिगत बनाया, वह स्वयं इसका स्रोत था।'[5]

प्रिप्रेटरी कक्षाओं के संचालन से एक लाभ सरकारी विद्यालयों को अवश्य होने का रहा है कि अभिभावकों के सामने अब एक विकल्प होगा कि वे अपने बच्चों को इन स्कूलों में पढ़ने के लिए भेज सकते हैं, परंतु इसके लागू होने के लिए नए संसाधनों की आवश्यकता होगी जिसकी अभी फिलहाल पूर्ति होती नहीं दिख रही है। शिक्षा नीति-2020 के कार्यान्वयन हेतु प्राथमिक रूप से चयनित 1252 केंद्रीय विद्यालय में से 50 विद्यालयों में सन् 2022 से तथा 450 केंद्रीय विद्यालयों में 2023 से बालवाटिका की कक्षाएँ चल पाई हैं। राज्य सरकार के विद्यालय विशेषतः उत्तर प्रदेश के सरकारी माध्यमिक और प्राथमिक विद्यालयों में एक अलग समस्या है। यहाँ अधिकतर विद्यालयों में पर्याप्त कक्ष ही नहीं हैं जहाँ आँगनवाड़ी केंद्रों को संचालित किया जा सके और विद्यालय द्वारा उनपर निगरानी रखी जा सके, फलस्वरूप आँगनवाड़ी केंद्र पोषक आहार वितरण के केंद्र बनकर गाँवों की पंचायत कक्षों में चल रहे हैं, इससे कुछ खास भला नहीं हो पा रहा है। यह तभी सुधरेगा जब सभी आँगनवाड़ी केंद्रों के प्राथमिक शालाओं से संबद्ध कर दिया जाए और उनपर व्यापक प्रभावी नियंत्रण हो।

शिक्षा नीति का एक अन्य सुझाव शिक्षक-छात्र अनुपात है, जिसके कारण शिक्षकों और छात्रों को पारस्परिक समन्वय के लिए पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाता है। जहाँ प्राइवेट विद्यालयों में एक-एक कक्षा में 55 से 60 बच्चे भरे पड़े हैं, वहीं सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में कहीं कहीं 10 से 20 बच्चे उपलब्ध होने मुश्किल हैं ।

इससे संसाधनों पर अनावश्यक बोझ बढ़ता है तथा जहाँ आवश्यकता है वहाँ शिक्षक उपलब्ध नहीं हो पाता है। इस प्रकार की समस्या का समाधान संकुल विद्यालय की परिकल्पना द्वारा किया जा रहा है जो सराहनीय प्रयास है। नई शिक्षा नीति शिक्षक छात्र अनुपात के संबंध में सुझाव देती है, प्राथमिक कक्षाओं में 1:30 (वंचित क्षेत्रों में 1:25), माध्यमिक कक्षाओं हेतु 1:40।

5 रवीन्द्र नाथ टैगोर - 'माई स्कूल' इंग्लिश राइटिंग ऑफ टैगोर, खंड 2, संपादक, शिशिर कुमार दास, साहित्य अकादेमी,1996

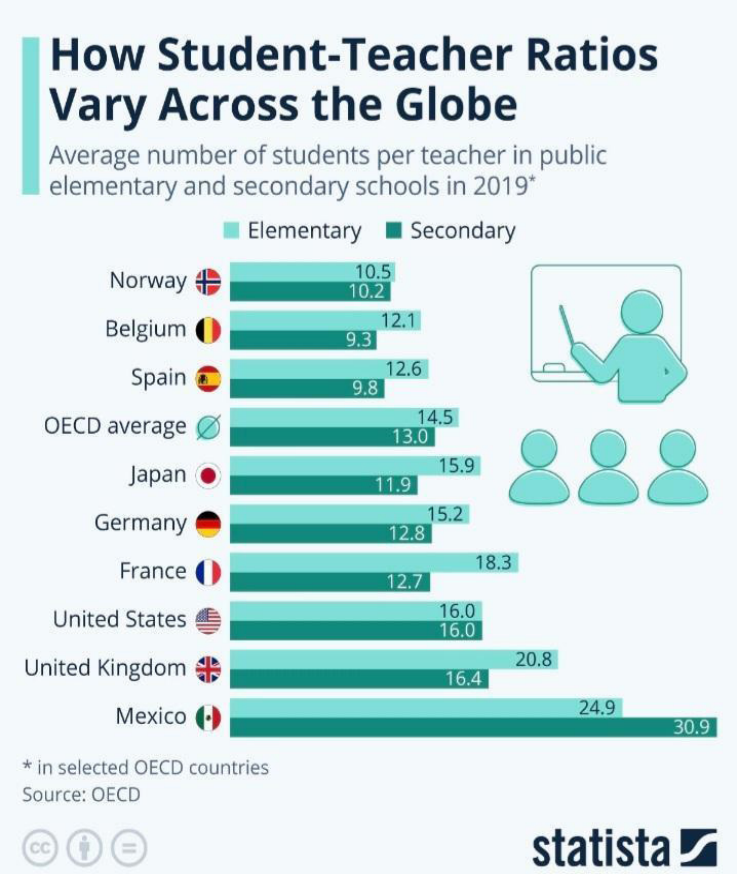

विश्व के विकसित देशों में शिक्षक-छात्र अनुपात औसतन 1:16 है, जबकि भारत में यह क्रमशः 1:30/35/40 तक है, जिसे प्राप्त किया जाना है। वहीं बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश जैसे जनसंख्या बहुल प्रदेशों में यह अनुपात 50 से 60 तक बढ़ जाता है। यह स्थिति प्राइवेट और पब्लिक दोनों स्कूलों में दिखाई देती है ।

नई शिक्षा नीति में परीक्षा के प्रारूप में भी व्यापक बदलाव की अनुशंसा की गई है। पूर्व प्राथमिक स्तर पर जहाँ खिलौनों और गतिविधियों के माध्यम से सीखने पर जोर दिया गया है, वहीं प्राथमिक स्तर पर आधारभूत संख्या ज्ञान तथा भाषा कौशल के विकास पर जोर दिया गया है। प्रत्येक छात्र इस स्तर पर सन् 2030 तक पहुंच जाए इसकी आशा की गई है।

इस प्रकार के लक्ष्यों की प्राप्ति में सर्वाधिक बाधक सरकारी तंत्र के कार्यों को पूरा करने के लिए

अध्यापकों के अविवेकपूर्ण तरीके से शिक्षणेत्तर कार्यों में नियोजन भी है। बार-बार ध्यान दिलाने पर भी शिक्षणेत्तर गतिविधियों में अध्यापकों को लगाने से विद्यार्थियों के सीखने के प्रतिफल पर बुरा असर पड़ता है। कक्षाएँ अवरुद्ध होती हैं तथा निर्धारित समय में पाठ्यक्रम पूरा करने में कठिनाई उत्पन्न होती है।

नियमित पूर्णकालिक अध्यापकों की नियुक्तियों की बात यह शिक्षा नीति करती है। बिना पूर्णकालिक शिक्षक के शिक्षण व्यवस्था को पटरी पर ला पाना दुरूह कार्य है। शिक्षकों की रिक्तियों संबंधी एक रिपोर्ट में दर्शाए गए आँकड़ों पर नजर डालते हैं तो पता चलता हैं कि जिन राज्यों में अध्यापकों की रिक्तियाँ कम हैं, वहाँ साक्षरता की दर उच्च है। केंद्र सरकार के द्वारा वित्तपोषित विद्यालयों में भी स्थिति अच्छी नहीं है। विगत वर्षों से अध्यापकों की नियुक्ति सही समय पर नहीं होने से शिक्षा प्रभावित हो रही है।

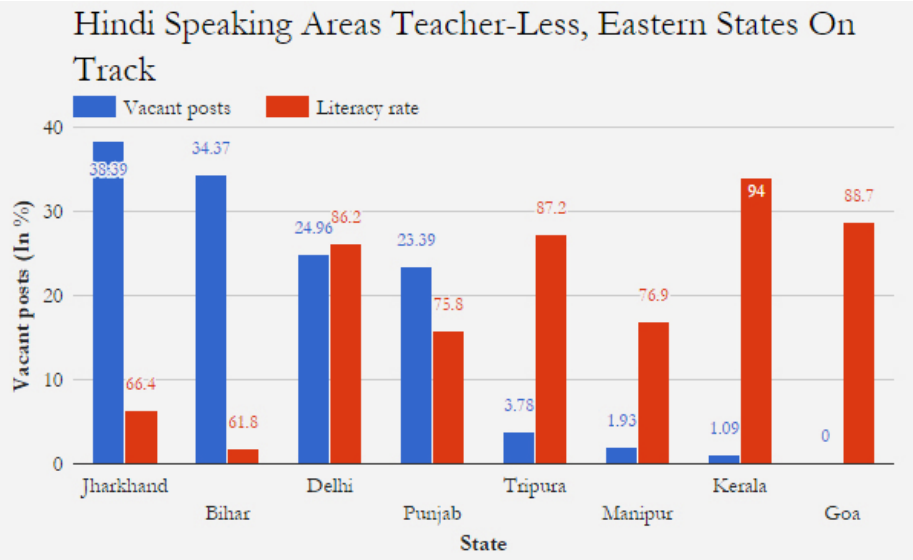

इसी प्रकार विभिन्न राज्यों के सरकारी विद्यालयों में अध्यापकों की रिक्तियाँ शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति में एक बड़ी बाधा बनी हुई हैं।

माध्यमिक स्तर की शिक्षा व्यवस्था में एक नया परिवर्तन विषयों के चयन में विद्यार्थियों की स्वायत्तता का भी लाया गया है। दसवीं के बाद छात्रों को विज्ञान मानविकी और वाणिज्य के कठोर अनुशासनिक विषय उपबंध से मुक्त रखने का भी है। विद्यार्थी चाहे तो अपनी इच्छा से किसी विषय का चयन कर सकता है, जिसमें उसकी रुचि हो। यह सुझाव अच्छा तो है परंतु इसके लिए अभी तक रोडमैप तैयार नहीं किया जा सका है। इसी तरह त्रिभाषा-सूत्र के लागू करने पर जोर तो दिया गया है परंतु ये प्रावधान बाध्यकारी नहीं हैं।

जिस सुझाव पर सबसे ज्यादा चर्चा हुई है वह है प्राथमिक कक्षाओं में मातृभाषा में पढ़ाई है। यह

भारत जैसे भाषाई विविधता वाले देश में यह सराहनीय कदम है परंतु इसके लिए व्यापक संसाधन को जुटाना, भविष्य की शैक्षिक उन्नति में सभी छात्रों के लिए समान अवसर प्रदान करने के लिए उनकी योग्यता आकलन हेतु परीक्षाओं को तुलनात्मक रूप से उसी भाषा में आयोजित करना एक कठिन और बड़ी जिम्मेदारी है। पाठ्यपुस्तकों का मानकीकरण कर उनको विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित करवाना भी बड़ी चुनौती है। अभी तक पाठ्यचर्या की रूपरेखा ही तय नहीं हो सकी है, ऊपर से सभी पाठ्यपुस्तकों को उसके अनुरूप तैयार करना एक श्रमसाध्य, व्ययप्रधान कार्य है। इसे अगले सत्र 2024 तक पूर्ण करना किसी चुनौती से कम नहीं है।

शिक्षा नीति में शिक्षक को पुनः शिक्षा व्यवस्था के केंद्र में रखकर विद्यालयों में शिक्षा लक्ष्यों के निर्धारण की बात कही गई है। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के सुदृढ़ और शिक्षण लक्ष्यों के अनुरूप पुनर्नियोजित करने की बात भी कही गई है। यह सत्य ही है कि वर्तमान में शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान बदलते शैक्षिक परिवेश से दूर हैं। यदि इस नीति को पूरे मनोयोग से लागू किया गया तो विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्कृष्ट शिक्षकों को तैयार करने में इस शिक्षा नीति के सुझाव अवश्य फलदाई होंगे।

स्कूल अभिभावक तथा समाज के पारस्परिक सहयोग पर इस शिक्षा नीति में व्यापक बल दिया गया है। विद्यालय के शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विद्यालय प्लान के निर्माण और कार्यान्वयन में उनकी भूमिका को रेखांकित करते हुए उनसे परस्पर सामंजस्य स्थापित करने की बात कही गई है।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी के पारस्परिक उन्नयन हेतु भारत की इस शिक्षा नीति का लागू होना क्रांतिकारी कदम है।

●●●

भाषा और राष्ट्रीय अस्मिता

डॉ. प्रमोद कुमार दुबे[1]

औनिवेशिक भाषा षड्यंत्र

भारत के उत्तरी और दक्षिणी भागों में आज जिस विभेद की बात सुनी जाती है, उसे लगभग तीन सौ साल पहले फादर बार्थलोम्य जिगेलवर्ग ने प्रारम्भ की थी और एडवर्ड टामस ने 1866 में मूर्तमान करने का प्रयास किया था। इसके लिए टामस ने आर्य को जाति घोषित किया, इसके बाद आर्य और द्रविड़ विभेद को बढ़ाने के लिए भाषा को माध्यम बनाया जाने लगा। इस षड्यंत्र के वृत्तांत में विदेशी अध्येताओं के अनेक परस्पर विरोधी कथन मिलते हैं, जिन्हें पढ़कर ऐसा लगता है कि विभेदक वृत्तांत निर्माताओं के पास ठोस आधार नहीं था, उन्हें किस्म-किस्म की अटकलों से वृत्तांत बनाना पड़ रहा था।

भारतीय भाषाओं विषय में सबसे पहले फ्रेंच विद्वान अरदू ने 1767 ई. में यह कहा कि 'संस्कृत के साथ ग्रीक और लैटिन की समानता है।' यह तथ्य अँग्रेज के लिए पीड़ादायक था, उन्होंने फ्रेंच विद्वान अरदू को भाव नहीं दिया, लेकिन संस्कृत उनके निशाने पर जरुर आ गई। आर्थिक, राजनीतिक मोर्चों की तरह भाषा के मोर्चे पर ढ़ाई सौ साल पहले हमलों का जो सिलसिला शुरु हुआ, वह आज स्वाधीन भारत में भी बदस्तूर जारी है। स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'आर्यों का आदि देश और इनकी सभ्यता' में पृ. 121 पर 5 सितंबर 1977 को इण्डियन एक्सप्रेस में छपे राष्ट्रपति द्वारा मनोनित एक सांसद फैंक एन्थोनी की माँग का उल्लेख किया है। फैंक एन्थोनी ने भारत की संसद में 4 सितंबर 1977 को माँग की थी कि संविधान के आठवें परिशिष्ट में परिगणित भारतीय भाषाओं की सूची में से संस्कृत को निकाल देना चाहिए, क्योंकि यह विदेशी आक्रान्ता आर्यों के द्वारा इस देश में लाई गई विदेशी भाषा है। फैंक एन्थोनी जैसे लोगों को संस्कृत से इतनी परेशानी क्यों है? इनकी परेशानी का पेंच खोलने पर पता चलता है कि संस्कृत अँग्रजी की रूह को ऋणी करती है और भारतीय भाषाओं को एकात्मता प्रदान कर भारत राष्ट्र की अखण्डता अभिव्यक्त करती है।

रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के तृतीय अधिवेशन- 1786 ई. में सर विलियम जोन्स द्वारा दिए गए वक्तव्य को स्वामी विद्यानंद सरस्वती ने उद्धृत किया है- 'संस्कृत भाषा कितनी पुरानी क्यों न

1 प्रोफेसर, भाषा शिक्षा विभाग, एनसीईआरटी, नई दिल्ली-16

हो, इसका गठन अद्भुत है। यह ग्रीक से अधिक निर्दोष, लैटिन से अधिक समृद्ध और इन दोनों से अधिक उत्कृष्ट एवं परिमार्जित है। इसके बावजूद धातुओं और व्याकरणिक रूपों में वह दोनों से इतना प्रगाढ़ सम्बन्ध रखती है कि इसे आकस्मिक नहीं माना जा सकता, इतना प्रगाढ़ कि कोई भाषाविद् इनको किसी एक स्रोत से जो अभी तक अस्तित्व में नहीं है, उत्पन्न माने बिना नहीं रह सकता'[2] विलियम जोन्स ने यह नहीं माना कि ग्रीक और लैटिन संस्कृत से उत्पन्न भाषाएँ हैं, अपितु यह माना कि ये तीनों भाषाएँ एक स्रोत से उत्पन्न हुई भाषाएँ हैं और यह भी कि इन तीनों भाषाओं को उत्पन्न करनेवाली स्रोत भाषा अब अस्तित्व में नहीं है। जबकि हम सब जानते हैं कि संस्कृत की स्रोत भाषा वैदिक भाषा है और वह अस्तित्व में है। जोन्स ने एक ओर ग्रीक और लैटिन की तुलना में संस्कृत को श्रेष्ठ माना है, दूसरी ओर संस्कृत की स्रोत भाषा वैदिक भाषा का नाम तक नहीं लिया। इस विरोधाभासी कथन से जोन्स ने वास्तविक तथ्य को छिपाने का प्रयास किया। वह कहना नहीं चाहते थे कि संस्कृत के पुराने रूप से ग्रीक और लैटिन के सम्बन्ध भी हैं, क्योंकि इससे भारत की गरिमा बढ़ जाती।

भारतीय भाषाओं को लेकर विदेशी अध्येताओं के विचार और विखण्डनकारी षड्यंत्रों का उल्लेख करते हुए राजीव मल्होत्रा ने लिखा है कि 1801 ई. में एच.टी. कोल ब्रुक ने एक आलेख में दावा किया है कि 'भारतीय भाषाएँ संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं'।[3] 1808 ई. में श्लीगल ने भी बताया कि 'सभी भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं।' इसी प्रकार विलियम कैरी ने भी माना कि 'संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं को एकीकृत करती है।' ब्रुक, श्लीगेल और कैरी को क्या पता कि उनके इन कथनों से संस्कृत के सिर पर बिजली गिरती रहेगी।

1816 ई. में फैंज बॉप ने भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन शुरु किया। बॉप को ही ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का जनक कहा जाता है। उसने कहा- 'मैं नहीं मानता कि ग्रीक, लैटिन और दूसरी यूरोपीय भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं। इसके बदले मैं यह मानना उचित समझता हूँ कि सभी भाषाएँ किसी एक ही भाषा के विविध रूप हैं, जिसे संस्कृत ने अधिक अविकल रूप में सुरक्षित रखा है।' बॉप ने जोन्स की बातों को दुहराया है और मैक्स मूलर ने बताया कि एक ऐसा समय था जब भारतीयों, ईरानियों, यूनानियों, रोमनों, रूसियों, केल्टों और जर्मनों के पूर्वज एक ही चारदीवारी में ही नहीं, एक ही छत के नीचे रहते थे। मैक्स मूलर के इस कथन से प्रेरित होकर उस कल्पनिक मूल भाषा के उद्गम स्थान की खोज होने लगी, जिस स्थान से सभी भाषाएँ निकली थीं।

अलफ्रैड त्राम्बेली ने अत्यंत व्यापक और विशद अध्ययन के बाद सर्वनामों और क्रियाओं की समानता का विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि सबसे अधिक समानताएँ भारतीय केन्द्र को घेर कर

2 आर्यों का आदि देश और इनकी सभ्यता, पृ. 90, एशियाटिक रिसर्चेज़- 1788.422

3 भारत विखण्डन, पृ. 82-83

फैली है और परस्पर दूरस्थ भाषाओं में पाई जाती हैं, अतः भारत ही वह स्थान है, जहाँ से सब जातियाँ और भाषाएँ अलग-अलग दिशाओं में पहुँची हैं।[4] निश्चय ही अलफ्रैड त्राम्बोली के तथ्य को अँग्रेजी राज नहीं मानता। अँग्रेजों के इच्छानुसार भारोपीय भाषापरिवार की कल्पना की गई और आर्य आगमन का वितण्डा खड़ा कर दिया गया। इस वितण्डा की जड़ें फैंज बॉप द्वारा प्रारंभ किए गए ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में हैं, इसमें भी परस्पर विरोधी कथन हैं।

रामविलास शर्मा ने लिखा है कि 'भारत के संदर्भ में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की मुख्य स्थापना यह है कि यहाँ जितने भाषा परिवार हैं, वे सब बाहर से आए हैं। इनमें आर्य भाषा परिवार-संस्कृत तथा उसकी पुत्री भाषाओं का स्रोत तो वह आदि इंडो-यूरोपियन भाषा है ही जिससे ग्रीक, लैटिन, जर्मन आदि भाषाओं का विकास हुआ, द्रविड़ भाषा परिवार- तमिल, तेलगु, कन्नड़ मलयालम आदि भाषाओं का संबन्ध भी अब फ़िनो-उग्रियन से जोड़ा जाता है, जिसका अर्थ हुआ कि आर्य तो यूरोप से आए ही थे, द्रविड़ का आगमन भी वहीं से हुआ और उनके बन्धु-बान्धव फिनलैण्ड आदि प्रदेशों में अब भी उसी कुल की भाषाएँ बोलते हैं। तीसरा भाषा परिवार कोल या मुण्डा कहलाता है, इसका एक नाम ऑस्ट्रो-एशियाटिक है और इस नाम से ही सिद्ध होता है कि इसका संबन्ध ऑस्ट्रेलिया और एशिया के द्वीपों और देशों से है, भारत से मूलतः नहीं है। इस तरह भारत के तीनों प्रमुख भाषा परिवार बाहर से आए और अब यह कहना कठिन है कि यहाँ के आदिवासी कौन थे और किस भाषा परिवार के लोगों ने आकर सबसे पहले उनकी जमीन छीनकर यहाँ अपने उपनिवेश बनाए।

भारत के पूर्वाञ्चल में नाग भाषापरिवार की अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं यथा नागालैण्ड और असम में, किन्तु ऐतिहासिक भाषाविज्ञान ने इन भाषाओं को भारतीय माना ही नहीं है। इस भाषापरिवार का वैज्ञानिक नाम है- साइनो-टिबटन, चीनी-तिब्बती भाषा परिवार। न चीन भारत का हिस्सा है, न तिब्बत, इस भाषापरिवार का मूल केन्द्र हिमालय के उस पार है, इसलिए नाग भाषा बोलनेवाले भारत में बाहर से ही आए होंगे, जिन प्रदेशों में वे रहते हैं वे कभी भारत के अंग न रहे होंगे, इसमें किसे संदेह हो सकता है? निष्कर्ष यह निकलता है कि भारत ऐसा दरिद्र देश है कि इसकी अपनी कोई भाषाई संपदा है ही नहीं'।[5] यह है बॉप प्रणीत ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का चमत्कार। उसने भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से अपनी बातें स्थापित की थी।

अलेक्जेन्डर डी केम्पबेल और फांसिस वाइट ऐलिस ने तेलगु भाषा का व्याकरण लिखा और यह दावा किया कि तेलगु और तमिल की स्रोत भाषा संस्कृत नहीं, वह कोई संस्कृतेतर भाषा थी। 'ऐलिस ने दावा किया कि तमिल हीब्रू से जुड़ी है और प्राचीन अरबी से भी। उनका तर्क था कि चूँकि विलियम जोन्स

4 आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता, पृ.92-93

5 आर्य और द्रविड़ भाषा-परिवारों का संबन्ध, पृ. 1-2

ने संस्कृत को हेम की भाषा माना था और अन्य विद्वानों ने दावा किया था कि संस्कृत नूह के सबसे बड़े पुत्र जोफेथ से निकलकर आई थी, तो नूह के पुत्र शेम अवश्य ही द्रविड़ों के पूर्वज रहे होंगे। इस तर्क ने द्रविड़ को शकों की एक शाखा बना दिया या यहूदियों के परिवार में ही रखा'।[6] पादरी वृत्तांत की वितण्डा यह सिद्ध करना चाहती है कि द्रविड़ वंश की शाखा और यहूदियों का परिवार एक दूसरे से संबन्धित थे।

सन् 1840 में स्कॉटिश मिशनरी सोसाइटी से ऐवरेण्ड जॉन स्टीवेंसन भारत आया और उसके साथ ब्रायन हाउटन हॉजसन भी। हॉजसन ने आदिम भाषाओं का विवरण तैयार किया। इस विवरण में द्रविड़ और मुण्डा परिवार भी शामिल था। इन भाषाओं के बारे में हॉजसन ने बताया कि भारत में संस्कृत के आगमन से पहले द्रविड़ और मुण्डा भाषाएँ मौजूद थीं। हॉजसन ने ही 1848-49 ई. में यह सिद्ध किया कि तमिल ही भारत के आदिम निवासी थे, जिनकी भाषाओं को आर्य आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया। यदि हॉजसन की यह बात सच है कि द्रविड़ भारत के आदिम निवासी हैं तो ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की यह बात झूठी हो जाएगी कि द्रविड़ फिनलैण्ड से आए थे। इस प्रकार नूह के सबसे बड़े बेटे जोफेथ या हेम के मुँह से संस्कृत निकलने की बात सही है तब नूह के दूसरे बेटे शेम को द्रविड़ों का पूर्वज कैसे बताया जा सकता है? आधुनिक विज्ञान की एक शाखा जीवविज्ञान की पाठ्य पुस्तक भी खोपड़ियों के अंतर के आधार पर मनुष्य जाति के पाँच प्रकार बताती है- हेमेटिक, सेमेटिक, आर्य, द्रविड़ और मंगोल। फिर वही विरोधभास सामने आता है कि यदि हेम और शेम नूह के वंश थे तो वे दो प्रकार के मनुष्य कैसे हो गए?

इसी वितण्डा के एक सशक्त हस्ताक्षर बिशप कोल्ड वेल भी हुए, जिन्होंने द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण बनाया और सिद्ध किया कि द्रविड़ और आर्य में दूर-दूर तक कोई संबन्ध नहीं है। सुप्रसिद्ध भाषाविद् ह. बालसुब्रह्मण्यम् ने लिखा है कि पादरी कोल्ड वेल की पुस्तक 'द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन' ने दक्षिणात्यों के मन में इस धारणा को दृढ़ मूल कर दिया कि हमारी भाषाओं का उत्तर भारत की भाषाओं से कोई मेल नहीं है। अँग्रेजी की शिक्षा के प्रभाव से माना जाने लगा कि भारत की आर्य भाषाओं का ईरानी, यूनानी, जर्मन और लातीनी भाषाओं से तो संबन्ध है, परन्तु विन्ध्यांचल के दक्षिणी में प्रचलित भाषाओं से आर्यभाषाओं का संबन्ध नहीं है। लोग यह मानने लगे कि दक्षिण की भाषाएँ द्रविड़ परिवार की हैं और उत्तर की भाषाएँ आर्य भाषाएँ हैं। 20वीं शताब्दी के फ्रेंच विद्वान ए.बी. एमनों ने इस सत्य का उद्घाटन कर दिया कि एक ही भूखण्ड की भाषाएँ होने के कारण उत्तर और दक्षिण भारतीय भाषाओं की वाक्य रचना में प्रकृति और प्रत्यय में, शब्द और धातु में, कथन शैली और भावधारा में एवं चिन्तन प्रणाली में यत्र तत्र सर्वत्र समानता है।[7] इस सत्य-तथ्य के बाद भी अँग्रेजी शिक्षा के कारण पादरी वृत्तांत का वितण्डा प्रभावकारी बना। भाषा विभेद की पृष्ठभूमि में ही तमिलनाडु में आर्य विरोधी द्रविड़ राजनीति प्रारंभ हुई थी

6 भारत विखण्डन, पृ. 83

7 हिन्दी और तमिल के समान तत्त्व, राज भाषाभारती, अप्रैल-सितंबर 1982

और यही राजनीति भाषा वार भारत के राज्यों के पुनर्गठन के बाद देश भर में उत्पन्न होती। जबतक आधुनिक भारतीय शिक्षा और भारतीय राजनीति भाषा की भारतीय अवधारणा को व्यवहार में नहीं उतारेगी, अँग्रेजी राज में उत्पन्न भारत तोड़क मानसिकता भाषा विभेद का हथियार लेकर लड़ती रहेगी।

वर्गसंघर्ष के लिए भाषाभेद

अँग्रेजी राज के मनगढ़ंत वृत्तांतों की बुनियाद पर मार्क्सवादियों ने भी भाषा क्षेत्र में वर्गभेद का मोर्चा खोल रखा है। वर्गभेद और वर्गसंघर्ष से सामाजिक क्रांन्ति लानेवाले मार्क्सवादी भाषाविद् भाषा क्षेत्र में किस तरह की सोच पैदा करते हैं इसका नमूना देखिए- 'हम केवल भाषा की संरचना व शब्दकोश से ही संसार को नहीं समझते। संरचना और शब्दकोश से लगभग स्वतंत्र किस भाषा का सत्ता के साथ क्या रिश्ता है, यह समझना भी आवश्यक है। यहाँ भाषा वही दर्जा अपना लेती है जो सामाजिक शोषण की व्यवस्था में भूमि, पानी या धन का होता है, जिसके पास जितना ही अधिक, उसके पास उतनी अधिक सत्ता और उसे शोषण का उतना ही अधिक अधिकार। हिन्दी क्षेत्र में यह खेल हिन्दी हजारों स्थानीय व क्षेत्रीय भाषाओं के साथ खेलती है। यही खेल संस्कृत व फारसी ने खेला और आज भारत के महानगरों में और अनेक रोज पनपते शहरों में अँग्रेजी हिन्दी के साथ तथा अन्य भाषाओं के साथ खेल रही है। सत्ता को लगता है कि जनजातियों व पिछड़ी हुई बोली-भाषाओं का उद्धार केवल हिन्दी भाषा व देवनागरी लिपि से ही संभव है। ठीक उसी तरह पब्लिक स्कूलों की मान्यता है कि ज्ञान केवल अँग्रेजी में ही उपलब्ध है। हिन्दी में न तो कुछ है और जो है वह समझ में नहीं आता।'[8] भौतिक पूँजी और सत्ता की तरह भाषा किसी को रोकती नहीं कि वह उसे प्राप्त न करे। हिन्दी सबके सहभाग से, सबकी होकर विकसित हुई, यह सबके निकट जाती है और स्वयं उपलब्ध होती है, यह लोकव्याप्त भाषाओं से निथरकर संतों की वाणी बनी, स्वतंत्रता संग्राम की भाषा हुई और जनसंपर्क का माध्यम। हिन्दी जनवाणी है। इसके विकास में सत्ता और शोषण के विरुद्ध रहनेवाली जनपक्षधर शक्ति है। फिर भी मार्क्सवादी आरोप लगा रहे हैं कि हिन्दी हजारों स्थानीय व क्षेत्रीय भाषाओं के साथ सत्ता और शोषण का खेल खेलती है। यह आरोप भाषा विभेद की राजनीति से प्रेरित है। यदि आधुनिक भारत के राजनीतिक, शैक्षिक और बौद्धिक क्षेत्रों में भाषा की भारतीय अवधारणा की निरंतर चर्चा बनी रहती, भाषा भेद से राज्य और राष्ट्र भेद का षड्यंत्र प्रभावकारी नहीं होता।

स्वतंत्र भारत में भाषा विभेद

भारत की अखण्डता को सुदृढ़ बनाने के बदले स्वाधीनता प्राप्ति के प्रथम दशक में ही भारतीय भाषाओं में विभेद मानकर भाषा वार राज्यों के पुनर्गठन का राष्ट्रघाती प्रयास प्रारंभ होने लगा। इससे भारत के राज्यों में परस्पर दूरी बढ़ती, भारत राष्ट्र की अखण्डता संकटग्रस्त होती। लेकिन जब यह कार्य प्रारंभ हुआ चारों ओर उपद्रव होने लगा और तत्कालीन केन्द्र सरकार विवादों में घिर गई। इतिहास का हिस्सा बन चुके

8 रमाकांत अग्निहोत्री, प्राक्कथन- भाषा, बोली और समाज

इस प्रकरण से ज्ञात होता है कि भारतीय भाषाओं के विविध रूपों में गहरी एकात्मता है और इससे सांस्कृतिक शक्ति की अभिव्यक्ति होती है। भाषा ही संवाद का माध्यम बनती है और यही परस्पर संबन्ध सृजित कर अर्थ की अभिवृद्धि करती हैं।

जिन दिनों पं. नेहरू भारतीय भाषाओं में विभेद मानकर भाषा आधारित राज्यों के पुनर्गठन पर तुले हुए थे, उनके प्रस्ताव का मजाक उड़ाते हुए बिहार और बंगाल के विलय की बात उठ खड़ी हुई। दोनों राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने 25 जनवरी 1956 को संयुक्त वक्तव्य दे दिया कि हम बिहार और बंगाल का विलय चाहते हैं। इस संयुक्त वक्तव्य से नेहरू के प्रस्ताव को ठेस पहुँची। दीनदयाल उपाध्याय ने इस प्रसंग में लिखा है कि 'जब देश का वातावरण इतना दूषित हो चुका हो, बंगाल-बिहार के विलय का प्रस्ताव सराहनीय है, स्वराज्य के पश्चात यह सबसे शुभ संवाद है। यह प्रतिक्रिया नेताओं ने व्यक्त की। मैं तो कहूँगा कि यह संवाद उससे भी शुभतर है। सन् 1947 में स्वराज्य आया, किन्तु देश बँट गया। उस समय हम बँटबारे के धक्के को सहन कर सके, कारण स्वराज्य प्राप्ति का नया जोश था तथा मुस्लिम लीग की सांप्रदायिक नीतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप राष्ट्रीयता का भाव प्रबल था। आज ऐसी कोई चीज नहीं। आज तो हमें अपने ही बल, अपने भावात्मक राष्ट्रीयत्व पर खड़ा होना पड़ेगा'।[9]

जब राज्य पुनर्गठन आयोग के अध्यक्ष फजल अली ने 10 अक्टूबर 1955 को भाषा के आधार पर मुम्बई प्रांत के टुकड़े-टुकड़े कर देने की अनुशंसा कर दी, एक टुकड़े पर विदर्भ राज्य, दूसरे टुकड़े पर महाराष्ट्र और तीसरे टुकड़े पर गुजरात को अधिकार देने का प्रस्ताव रखा, विभाजन के नए दंश से जनमन व्याकुल हो उठा। भारत की आर्थिक राजधानी मुम्बई के विखण्डन के दुखद प्रस्ताव के विरुद्ध एकात्म राष्ट्र के चिन्तक दीनदयाल जी ने अलख जगाई। उन्होंने मुम्बई में जनसंघ कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए कहा था कि 'आयोग के समक्ष जनसंघ द्वारा एकात्म शासन की माँग की गई थी। इसके साथ राज्य पुनर्गठन के संदर्भ में कुछ सिद्धान्त भी प्रस्तुत किए गए थे। उनमें एक सिद्धान्त यह भी था कि एक भाषा-भाषी क्षेत्र दो हिस्सों में विभाजित नहीं किया जाना चाहिए, परंतु आयोग ने मराठी भाषी विदर्भ रहित द्विभाषी मुम्बई राज्य की सिफारिश की। यह उनकी भूल थी'[10]। 'देश में हुए उपद्रवों से एकात्म शासन की माँग बढ़ती जा रही है।' 'राज्य पुनर्गठन के नाम पर सभी झगड़े कृत्रिम रूप से खड़े किए गए हैं। प्रत्येक भाषा भाषी देश के प्रत्येक हिस्से में निवास करता है। भाषा वार प्रांत विभाजन के सिद्धान्त को स्वीकृत करना बहुत बड़ी भूल होगी। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होगा जो कि दूसरी भाषाओं का विरोध करे। सभी भाषाओं का विकास भी होना चाहिए। प्राथमिक शिक्षण और बहुत सारा प्रशासनिक कार्य भी अपनी-अपनी मातृभाषाओं में ही होना चाहिए। मातृभाषा का अपना एक महत्त्व है और व्यक्ति की भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम है। इसके साथ ही

9 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय- 4.22

10 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय- 4.37

हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी का भी प्रचार एवं प्रसार होना आवश्यक है।' 'यदि विभिन्न भाषाओं के आधार पर प्रांतों के निर्माण का सिद्धान्त मुम्बई की पृष्ठभूमि में है तो अन्य स्थानों पर वहाँ की जनता दूसरे भाषा-भाषियों को आने नहीं देगी'।[11]

भाषा आधारित राज्यों के पुनर्गठन के दौर में फैली अराजकता का एक दुखद उदाहरण मुम्बई का हिंसक आन्दोलन है। यह आन्दोलन संयुक्त महाराष्ट्र समिति और वाम दलों ने तब प्रारंभ किया था, जब 19 अक्टूबर 1955 को नेहरू ने भाषा के आधार पर संयुक्त महाराष्ट्र, महागुजरात और मुम्बई के विभाजन का फार्मूला पेश किया और कांग्रेस कार्य समिति ने उस फर्मूले पर मुहर लगाई। इस आन्दोलन का दमन करने के लिए पुलिस ने 18 नवंबर 1955 को गोली चलाई थी। गोलीबारी में 105 लोगों की मृत्यु हुई थी और 250 लोग घायल हो गए थे। दीनदयाल जी ने पांचजन्य में 30 जनवरी 1956 को लिखा कि 'राज्य पुनर्गठन के विषय में केन्द्र सरकार का निर्णय प्रकाशित होने के पश्चात मुम्बई, बेलपुर, कोल्हापुर, उड़ीसा, बंगाल एवं बिहार में जो प्रतिक्रिया हुई है, वह सभी के लिए चिन्ता का कारण है। इन घटनाओं से पंडित नेहरू के नेतृत्व को भारी धक्का लगा है। यह स्पष्ट हो गया है कि कांग्रेस जन संकुचित प्रांतीयता को छोड़कर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करने को तैयार नहीं। कांग्रेस के मंत्रियों तथा विधान मंडलों के सदस्यों ने त्यागपत्रों का ताँता भी यह बतलाता है कि केन्द्रीय आदेशों का वे कोई महत्त्व नहीं समझते। वैसे यह बात भी सत्य से परे नहीं है कि वे काँग्रेसजन व्यापक जन भावना के कारण ही त्यागपत्र का तमाशा करने पर विवश हुए हैं।'

उन दिनों पंजाब में भी सरकारी नीतियों के विरुद्ध हिन्दी रक्षा समिति की ओर से स्वामी आत्मानंद के नेतृत्व में आन्दोलन हो रहा था। दीनदयाल जी ने 5 अगस्त 1957 को पांचजन्य में लिखा- 'माननीय आत्मानंद के नाम पं. नेहरू का पत्र समिति के न्यूनतम माँगों का भी संतोषजनक उत्तर नहीं दे सका है।' भाषा वार राज्यों के विभाजन को लेकर काँग्रेस के भीतर भी घमासान मचा हुआ था, जिसके विषय में दीनदयाल जी का कथन है, 'काँग्रेस हाई कमान में आपसी झगड़ों के कारण उक्त सर्जना सत्य सृष्टि में परिणत न हो सकी। तबसे पं. नेहरू द्वारा यह संकेत दिया गया है कि वह प्रधानमंत्री पद से मुक्त होना चाहते हैं, उनकी गद्दी प्राप्त करने के इच्छुक अपने समर्थकों की संख्या बढाने में व्यस्त हैं। परिणामस्वरूप अबतक जिस गुटबंदी ने विभिन्न प्रदेशों के वातावरण तथा प्रशासन को दूषित कर रखा था, वह केन्द्र में भी प्रारंभ हो गई है'।[12]

23 जुलाई 1956 को पांचजन्य में दीनदयाल जी ने लिखा- 'शासन ने अभी तक जिस नीति का संकेत किया है, उससे यह लगता है कि वह राज्य पुनर्गठन विधेयक में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं करने वाला। शासन की शायद इसी नीति का परिणाम है कि अनेक प्रदेशों में अभी तक शांति नहीं हो पाई। मुम्बई

11 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय- 4.37-38

12 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय - 4.220

और पंजाब में तो आंदोलन लगातार चल ही रहे हैं, बिहार और बंगाल में भी फिर ज्वाला भड़क उठी है। बंगाल की हड़ताल और उसके संबन्ध में की गई गिरफ्तारियों से यह स्पष्ट है कि वहाँ का शासन किसी दूरदर्शी नीति से काम नहीं ले रहा'।[13]

देश में भाषा आधारित राज्य विभाजन के विरुद्ध आन्दोलन बढ़ता जा रहा था, सरकार उसे कुचलने में लगी हुई थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू स्वयं की बनाई हुई देशी समस्या को विदेशी फार्मूले से हल करने में लगे हुए थे। इस संदर्भ में दीनदयाल जी ने 16 अगस्त 1956 को ऑर्गेनाइजर में लिखा- 'राजभाषा आयोग के प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का समय निकट आ रहा है। गरमी में श्रीनगर की ठंडक में बैठकर अपना प्रतिवेदन लिखने का उन्होंने निर्णय किया था, किन्तु ऐसा लगता है कि उन्हें और अधिक ठंडक की आवश्यकता है। इसलिए शायद आयोग के सचिव को रूस जाकर वहाँ की भाषा नीति का अध्ययन करने का आदेश किया गया है। राष्ट्र जीवन के हर क्षेत्र में विदेश की नकल की यह प्रवृत्ति राष्ट्रीय स्वाभिमान को तो ठेस पहुँचाती ही है, साथ ही वह हमारे समुचित विकास एवं योग्य निर्णयों में भी बाधक है। रूस की भाषा नीति का भारत के साथ कोई सामंजस्य नहीं। प्रथम तो भारत के समान रूस एक देश नहीं, कि समान संस्कृति एवं परंपरा हो, दूसरे रूस ने अपने निर्णयों को तानाशाही शासन के द्वारा क्रियान्वित कराया है। भारत की स्थिति भिन्न है'।[14] 'भाषा आधारित राज्य पुनर्गठन की योजना से स्वयं सरकार द्वारा उत्पन्न की गई समस्या को हल करने के लिए पं. नेहरू ने रूस की भाषा नीति को ही नहीं, स्कॉटलैण्ड पर लागू ब्रिटेन के स्काटिश पैटर्न प्लान को भी असम के भाषा विवाद के संदर्भ में प्रस्तावित किया था'।[15]

कहना उचित होगा कि जबतक औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त होकर भारत के सांस्कृतिक इतिहास के साक्ष्य में भाषाओं की एकात्म भूमिका को ठीक से समझा नहीं जाएगा, भाषा दर्शन पर आधारित विविध भाषाओं के बीच की एकसूत्रता स्थापित करने वाली भाषा की भारतीय अवधारणा से परिचय नहीं होगा, तब तक व्यवहारिक धरातल पर एकात्म राष्ट्र साकार नहीं होगा। भाषा आधारित राज्यों के पुनर्गठन के दौर में सत्तासीन नेतृत्व के सामने यह तथ्य स्पष्ट नहीं था।

दीनदयाल जी ने पंजाबी और हिन्दी को लेकर उठे विवादों के प्रसंग में धार्मिक मतों के प्रचार में विभिन्न भाषाओं की भूमिका का उल्लेख कर यह बताया कि भाषाएँ धार्मिक विभेद का कारण नहीं होती, अपितु सबका संदेश वाहक होती हैं। उन्होंने लिखा है- 'यह निश्चित है कि पंजाबी अथवा हिन्दी किसी भी गुट की धार्मिक भाषा नहीं हो सकती। यह भी ठीक है कि विभिन्न धर्मों के संस्थापकों ने अपने सिद्धान्तों का विभिन्न भाषाओं के माध्यम द्वारा प्रचार किया। लेकिन कोई भी उन्नतिशील धर्म अपने प्रचार को एक भाषा

13 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय - 4.116

14 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय- 4.113

15 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय- 4.148

में बाँधकर नहीं रख सका है। बाइबिल की मौलिक प्रति हिब्रू भाषा में थी, लेकिन उसका अनुवाद हम सब भाषाओं में पाते हैं। भगवान बुद्ध ने पालि भाषा का प्रयोग किया था, लेकिन जैसे-जैसे उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई, बुद्ध की शिक्षाओं को विभिन्न भाषाओं में अनूदित किया जाने लगा। जैन तीर्थंकरों ने अर्धमागधी का प्रयोग किया था, लेकिन मुनियों ने संस्कृत में लिखकर भी जैन दर्शन की अभिवृद्धि की है। उसी तरह कुछ सिख गुरुओं ने अपनी वाणी के लिए पंजाबी को अपनाया होगा, किंतु गुरुग्रंथ साहब पंजाबी में नहीं है। उसमें बहुत बड़ी संख्या हिंदी पदों की है। गुरु नानकदेव तक ने अपने बहुत से भजन ब्रजभाषा में रचे थे। गुरु गोविन्द सिंह हिंदी और संस्कृत के समान रूप से विद्वान थे और हिन्दी में उनकी पुस्तकें उच्चकोटि की हैं।' भाषाओं की सहयात्रा को रेखांकित करते हुए दीनदयाल जी ने लिखा है- 'महर्षि दयानंद यद्यपि गुजराती थे, किन्तु उन्होंने अपने विचारों का हिन्दी में प्रचार किया, क्योंकि वे देख रहे थे कि हिन्दी अखिल भारतीय भाषा के रूप में विकसित होगी'।[16]

'हमारी सभी प्रादेशिक भाषाएँ अपने गुणों के कारण ही विकसित हुई हैं, राज्य के प्रश्रय के कारण नहीं, इसलिए सबको स्वतंत्रता मिलनी चाहिए और उनके विकास में आज की किसी भी राजनीतिक शक्ति को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए'।[17] दीनदयाल जी ने भाषाओं के विकास में आज की राजनीति को श्रेय नहीं दिया और न भाषा को किसी राज्य तक सीमित माना। वस्तुतः अँग्रेज द्वारा संचालित आधुनिक शिक्षा से रचे-बने लोग बहुधा भारत की चिति से कट जाते हैं, उन्हें ज्ञात नहीं रहता कि भारतीय भाषाओं की प्रकृति कैसी है, यहाँ की प्रादेशिक भाषाएँ किन गुणों के कारण अपनी पहचान में विकसित हुई हैं और क्यों उनमें एकसूत्रता बनी रहती है? ऐतिहासिक विकास के साथ की भारतीय भाषाओं की विविधता और अन्तर्भाषिकता दोनों गुण एक साथ अग्रसर हुए, इसका कारण है सहजात और सहयात्रिक संबन्ध। ये एक दूसरे का विकास करती हैं, विनाश नहीं।

भारत आत्म सत्ता का उपासक देश है। यह देश मानकर चलता है कि जगत में एक ही ब्रह्म के विविध रूप हैं। इसी धारणा के कारण सभी भारतीय भाषाएँ धार्मिक और सांस्कृतिक अभियानों में एक साथ रही और राजनीतिक मोर्चों पर भी। दीनदयाल जी ने लिखा है- 'एक भाषा की दूसरी के ऊपर प्रधानता होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। हिन्दी और पंजाबी दोनों ही भाषाओं के साथ समान दृष्टि से व्यवहार किया जाना चाहिए, क्योंकि दोनों पंजाब में अनेक बार उठे हुए राष्ट्रवाद का माध्यम रही हैं'।[18] एक भाषा की प्रधानता से दूसरी भाषाओं की हानि होने की बात पहली बार अँग्रेजी को स्थापित करने के लिए अँग्रेजी राज में उठाया गया और भारतीय भाषाओं के अन्तर्भाषिक चरित्र को क्षतिग्रस्त किया गया। जबकि आज की

16 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय - 4.224
17 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय - 4.225
18 दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय - 4.225

दुनिया जानती है कि जहाँ-जहाँ अँग्रेजी की प्रधानता हुई, वहाँ-वहाँ की भाषाओं का अंत हो गया।

भारतीय ज्ञान परंपरा की पृष्ठभूमि में अपने समय के अनेकानेक अवरोधों से जूझते हुए पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्वाधीन भारत के जीवमान चैतन्य अखण्ड और एकात्म स्वरूप को भाषा क्षेत्र में भी स्थापित किया। उन्होंने भारत की अखण्डता को सर्वोपरि मानकर संविधान के संघात्मक स्वरूप के बदले एकात्मक स्वरूप की अपेक्षा की थी। भाषा आधारित राज्यों के पुनर्गठन से भारत का एकात्म स्वरूप खण्डित होता और संघात्मक स्वरूप सशक्त बनता, जिससे भारत और इसके प्रदेशों का अंगांगी भाव नष्ट होता और प्रांतीय आग्रह बढ़ जाता।

यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत राष्ट्र को विभाजित करने के पहले अँग्रेजी राज ने भारतीय भाषाओं की एकात्मता को खण्डित किया था। अँग्रेजी राज में सबसे पहले भाषा को 'फूट डालो-राज करो' सिद्धान्त का हथियार बनाया गया था। भाषा को लेकर आज भी भारत में अँग्रेजी सोच जीवित ही नहीं, सक्रिय भी है। यदि यह सोच विद्यमान नहीं होती तो भाषा की भारतीय अवधारणा स्वतः स्थापित रहती और उससे भारतीय भाषाओं की एकात्मता मुखर होती, एकात्म संस्कृति, एकात्म राष्ट्र और एकात्म शासन ही सर्वत्र दृष्टि गोचर होता, जो वास्तव में भारत के जीवमान विराट स्वरूप में अन्तर्भूत है। भारतीय भाषाओं की एकात्मता का प्रमाण भक्ति आन्दोलन जैसे अखिल भारतीय आन्दोलनों से मिलता है।

भाषा की भारतीय अवधारणा

यह स्पष्ट रूप से ज्ञात रहना चाहिए कि भाषा की भारतीय अवधारणा विविध भाषाओं को एकात्म समझती है। एकात्मता की अभिव्यक्ति अन्तर्भाषिकता से होती है। भारतीय भाषाओं की एकात्मता का आधार वाक् तत्त्व है। यही भारतीय भाषा-चिन्तन का आधार है। स्वयं वाक् का कथन है कि वही यज्ञ की प्रथम ज्ञानमयी वाणी है। वही समृद्धिदात्री है और सबको जोड़नेवाली राष्ट्र शक्ति है- अहं राष्ट्री संगमनी वसुनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।[19] वस्तुतः वाग् तत्त्व से ही विविध भाषाओं में, विभिन्न शब्दों में, अनेक वर्णों और ध्वनियों में एकत्व स्थापित होता है। वाग् तत्त्व ही व्याकृत होकर भाषा बनता है। विविधता में अन्तर्निहित एकत्व को पहचान कर ही भाषा के सार्वभौमिक नियम बनाए गए, यथा- स्वतंत्रः कर्ता।[20] ये नियम न केवल भाषा में अपितु व्यवहार जगत में भी प्रयुक्त होते हैं।

वैदिक धारणा यह है कि पृथ्वी अनेक भाषाओं और धर्मों का घर है- जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथ्वी यथौकसम्।[21] भाषाओं का घर होने के लिए आवश्यक है कि विविध प्रकार के जनसमूहों के सदस्य एक दूसरे की भाषा समझें, सीखें और आदर दें। यह धारणा तभी पोषित होगी जब यह ज्ञात हो कि

19 ऋग्वेद -125.10

20 अष्टाध्यायी-1.4.54

21 अथर्ववेद- 12.1.45

भाषाओं में अन्तर्भाषिक संबन्ध होता है, अपनी विविध पहचान के साथ भाषाएँ एकात्म होती हैं। उनका आधार वर्णों की नित्य सत्ता है। वर्णों की आत्मा अकार है। अकार में वाक्य, पद, वर्ण और ध्वनि की सत्ता विलीन हो जाती है। इसलिए वाङ्मय को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि ध्वनिवर्णाः पदं वाक्यमित्येद्वाङ्मयं मतम्।[22] अकार ही सर्ववाक् है। अकार ही का स्पर्श, उष्म और अन्तस्थ भेद से अनेक वर्णों में विस्तार होता है- अकारो वै सर्वावाक् सैषा स्पर्शोष्मभिः व्यज्यमाना बह्वी नानारूपा भवति।[23] यह भी कहा जाना चाहिए कि अकार से निष्पन्न अक्, अल्, अच् इत्यादि प्रत्याहार व्याकरण शास्त्र के आधार हैं। व्याकरण के अनुसार शब्द निर्माण में कृत और तद्धित प्रत्ययों की भूमिका होती है। पतञ्जलि ने बताया है कि अनेक शब्दों और वाक्यों का निर्माण ऊह से होता है। यही मान्य प्रक्रिया विभिन्न भाषाओं के निर्माण में घटित होती है। इन तथ्यों से सिद्ध होती है कि भाषा की भारतीय अवधारणा में एकात्मता का सैद्धान्तिक आधार है। इसी आधार पर भारतीय भाषाएँ सहजात और सहयात्रिक मानी गईं।

विविध भारतीय भाषाओं की एकात्मता के कारण ही निरुक्तकार यास्क ने वैदिक और लौकिक शब्दों में समान रूप से अर्थ को स्थित माना है और अर्थ की दृष्टि से इन दोनों भाषा रूपों के शब्दों को एक समान महत्त्व दिया- अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्। लौकिकेषु अपि एतत्।[24] शौनक ने भी अर्थ संधान की दृष्टि से वैदिक और लौकिक वचनों में सम्बन्ध मानते हुए कहा है कि जो वैदिक है उसे लौकिक बना लेना चाहिए– यद्यत्स्याच्छादसं मन्त्रे तत्तत्कुर्यात्तु लौकिकम्।[25] लौकिक और वैदिक भाषा रूपों की एकात्मता के आधार ही इनमें परस्पर रूपान्तरण होता है।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में वैदिक को छन्दसि और लौकिक को भाषा (भाषायाम्) कहा। परिष्कृत होने के कारण भाषा को ही संस्कृत कहा जाने लगा। संस्कृत के साथ विविध प्रकार की लोक व्याप्त भाषाएँ भी प्रचलित रहीं, उन्हें प्राकृत कहा गया और प्राकृत को भी संस्कृत के समान मान्यता प्राप्त हुई। पाणिनीय शिक्षा में वर्णित विद्या को लोक और वेद सम्मत कहा गया है- यथोक्तं लोकवेदयोः, साथ ही प्राकृत और संस्कृत को समान वर्ण संख्याओं वाली भाषा बताया गया है- प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।[26] भरत मुनि ने भी नाट्य भाषा के लिए प्राकृत और संस्कृत के मध्य अनिवार्य सम्बन्ध रखा, नाट्यभाषा के अभ्यास के लिये संस्कृत रचनाओं का 'प्राकृत पाठ्य' आवश्यक समझा। नाटकों में मानव पात्रों के लिये अर्ध संस्कृत अथवा शौरसेनी प्राकृत के संवाद रखे गए। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि साहित्य और लोक व्यवहार में हजारों वर्षों से प्राकृत और संस्कृत की सहयात्रा होती रही। जमीनी हकीकत यह है कि संस्कृत सदैव भारतीय

22 अग्निपुराण- 337.1

23 तैत्तिरीयारण्यक- 2.3.6

24 निरुक्त – 1.15-16

25 बृहद्देवता 2.101

26 पाणिनीय शिक्षा-3

भाषाओं की प्रतिनिधित्व करती रही है। संस्कृत ने सभी भारतीय भाषाओं की व्याकरणिक व्यवस्था में सहयोग दिया और सर्वाङ्ग समृद्धि में सहायक हुई। स्वाधीनता संग्राम के आन्दोलन में संस्कृत ने वन्दे मातरम् जैसा ओजस्वी लोकप्रेरक उद्घोष दिया था, जो आज भी भारतीय जनमानस में व्याप्त है और यह उद्घोष राष्ट्र की स्वाधीनता, सम्प्रभुता का द्योतक है। संस्कृत का लोकप्रतिनिधित्व सर्व विदित है यह उन क्लासिक भाषाओं के समान नहीं है जिनकी कालान्तर में भूमिका समाप्त हो गई।

प्राकृत और संस्कृत

वैदिक भाषा में संस्कृत और प्राकृत भाषाएँ अभिन्न रूप में घुली-मिली हैं। इनमें परस्पर पूरकता है, उदाहरण के लिए वैदिक ऋचाओं में प्रयुक्त अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनियों की परस्पर पूरकता देखी जा सकती है, अनुस्वार संस्कृत की ध्वनि का द्योतन करता है तो अनुनासिक या कहें- चन्द्रबिन्दु प्राकृत की ध्वनि का द्योतन और स्वयं ब्रह्मनाद ऊँकार में अनुस्वार- म् अन्तर्भूत है एवं अनुनासिक चन्द्रबिन्दु प्रकट। अनुस्वार ही सूक्ष्म होकर अनुनासिक बन जाता है। चन्द्रबिन्दु को अर्धमात्रा कहा जाता है, यह नादात्मक ध्वनि है। इससे ज्ञात होता है कि ऊँकार संपूर्ण वर्ण ध्वनियों का मूल स्रोत है, इससे सारी वर्ण ध्वनियाँ निःसृत होती हैं और इसी में विलीन हो जाती हैं।

ऊँकार की वागग्नि अकार से निःसृत होकर उदात्त, अनुदात्त और स्वरित अथवा ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत उच्चारण-क्रम में स्वर और व्यञ्जन वर्णों का विस्तार करती है। व्यञ्जन वर्णों में स्पर्श, अन्तस्थ, उष्म की अन्तर्क्रिया होती है, जिससे व्यञ्जन वर्ण बनते हैं। ऊँकार में निहित अकार को संपूर्ण वाग् कहा गया है- अकारो वै सर्वा वाग्। इसलिए ऊँकार के साक्ष्य में ही वैदिक भाषा पर विचार करना चाहिए। इसमें उभय रूप से अनुस्वार और अनुनासिक का रूपान्तरण होता रहता है। यही वैदिक और लौकिक भाषाओं का आदि और अद्वैय स्रोत है।

अनुस्वार और अनुनासिक में परस्पर रूपान्तरण का एक सुन्दर उदाहरण विद्यापति की नाट्य कृति 'गोरख विजय' की भूमिका से लिया जा सकता है, इस भूमिका के विद्वान लेखक डॉ. हरिमोहन मिश्र ने गीतगोविन्द के एक गीत के मात्रिक छन्द का प्रसंग लेते हुए बताया है कि 'गीतगोविन्द' के एकाध गीत ऐसे अवश्य हैं, जहाँ संस्कृत भाषा मात्रिक छन्द के साँचे में अपने को ठीक से ढाल नहीं सकी है। एक गीत उधृत किया जा रहा है-

'श्रितकमला कुचमण्डल धृतकुण्डल कलित ललित वनमाल। जय जय देव हरे'- की 29 मात्राओं के छन्द में 12 - 6 - 11 के खण्ड हैं, किन्तु इसी गीत की अन्तिम पँक्ति में 12 वीं मात्रा के बदले 13 वीं मात्रा पर और 6 वीं के बदले 7 वीं मात्रा पर यति है। जैसे- 'श्रीजयदेव कवेरिदं कुरुते मुदं मंगलमुज्ज्वल गीतः'- यहाँ 'इदं' और 'मुदं' के अनुस्वार को यदि अपभ्रंश की ध्वनि प्रवृत्ति के अनुसार चन्द्रबिन्दु में अर्थात 'इदँ' और 'मुदँ' कर दिया जाए तो यति दोष दूर हो जाएगा।' इस उदाहरण से सिद्ध होता है कि अनुस्वार

और अनुनासिक ध्वनियाँ परस्पर रूपान्तरित होती हैं, साथ ही संस्कृत और प्राकृत में निस्संदेह पूरकता है। यह पूरकता गेय पदों में अधिक मुखर होती है, क्योंकि संगीत में शब्द से अधिक नाद की प्रबलता होती है। शब्द संगीत के स्वरों में टूटते हैं। गीतगोविन्दम् गेय संस्कृत काव्य है लेकिन इसकी गेयता में क्षेत्रीय उच्चारणों की स्वाभाविक छटा होती है।

गीत में लय की प्रधानता होती है, लय सांगीतिक गुण है, संगीत में अनुस्वार अनुनासिक ध्वनि में रूपान्तरित होकर अर्धमात्रा बन सकता है। फिर भी कुछ विदेशी विद्वान संस्कृत और प्राकृत के बीच अनुस्वार और अनुनासिक की नींव पर भाषा भेद की दीवार खड़ी करते पाए गए। हरिमोहन मिश्र ने एक ऐसे ही विदेशी पेंच को उजागर किया है। उन्होंने लिखा है कि 'ऐसे उदाहरणों के आधार पर ही यह नहीं कहा जा सकता कि गीतगोविन्द की रचना पहले अपभ्रंश में हुई और बाद में संस्कृत में।' वस्तुतः प्राकृत और अपभ्रंश को लेकर काम करनेवाले विदेशी विद्वानों ने संस्कृत और प्राकृत के अभिन्न संबन्ध को काटने का प्रज्ञापराध किया।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' से ज्ञात होता है कि 'पिशेल ने अन्य प्राकृतों के साथ अपभ्रंश का भी विवेचन किया। बाद में केवल अपभ्रंश को लेकर उन्होंने एक विवेचनात्मक पुस्तक लिखी। भामह और दण्डी (7 वीं शती) के समय में अपभ्रंश का साहित्य वर्तमान था, बाद के रुद्रट, राजशेखर, भोज आदि अलंकारिकों ने भी अपभ्रंश की चर्चा की। पिशेल ने विक्रमोर्वशीय, सरस्वती कण्ठाभरण, वेताल विंशति, सिहासन द्वात्रिंशतिका पुत्तलिका और प्रबन्ध चिन्तामणि आदि ग्रंथों में पाए जानेवाले अपभ्रंश पद्यों को तथा प्राकृत पैंगलम् में उदाहरण रूप से उधृत कविताओं को ढूँढ निकाला। इसके बाद हरमन याकोबी ने भी अपभ्रंश पर कार्य किया'।[27] लेकिन, माथा तब ठनकता है जब अपभ्रंश-प्रेम की इस कहानी में संस्कृत और प्राकृत के बीच विभेद का पेंच नाचता दिखाई देता है। भारतीय ज्ञान परंपरा पर अनावश्यक रूप से डारविन का विकासवाद आरोपित करते हुए विदेशी ज्ञानियों ने प्राकृत को पहले की भाषा और संस्कृत को बाद की भाषा सिद्ध करने का प्रयास किया, इसके लिए संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त प्राकृत और अपभ्रंश रचनाओं को अलग-अलग करके दिखाया।

क्या ऐसा नहीं होता कि हिन्दी का साहित्यकार अपनी रचना में आंचलिक पुट के लिए कहीं लोकभाषा भोजपुरी का प्रयोग कर दे? प्रेमचंद ने अपनी हिन्दी रचना गोदान में भोजपुरी गीत- 'पिपरा के पतवा सरीखे डोले मनवा' का प्रयोग किया है। यह प्रयोग नया नहीं, नाट्यशास्त्र और संस्कृत साहित्य की परंपरा में और समाज के भाषा व्यवहार में ऐसा ही प्रचलन है। इससे भाषाओं की एकात्मता सिद्ध होती है, न कि कोई दोष ।

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत नाटकों में गीतों की रचना संस्कृत में नहीं होती, प्राकृत में होती है,

27 हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृष्ठ 3-6

यह प्रयोग कालिदास के नाटकों से आरंभ हुआ। इन प्रयोगों में द्विपदी और चर्चरी को स्थान मिला। अभिज्ञान शाकुन्तलम् की प्रस्तावना में नटी गीत गाती है- अहो रागनिविष्टचित्तवृत्तिरलिखित इव सर्वतो रंगः। मेघदूत में- मद्गोत्रांक विरचितपदं गेयमुद्गातु कामा।[28] विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश गीतों के सोलह प्रयोग मिलता हैं।

भारतीय सृजन की परंपरा को नहीं जानने के कारण अथवा संस्कृत को प्राकृत और अपभ्रंश से काटकर अलग-थलग करने के साजिश के तहत कीथ ने संस्कृत ड्रामा पर लिखते हुए संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त गेय पदों को प्रक्षिप्त मान लिया।

गोरख विजय नाटक की भूमिका में डॉ. मिश्र ने लिखा है कि 'कतिपय गवेषक प्रकृत, अपभ्रंश, अवहट्ठ की साहित्य- संगीत परंपरा में गीतगोविन्द का उद्भव खोजते हैं। पिशेल ने इस परंपरा की ओर संकेत किया।'

उचित तो यह होता कि संगीत और नाटक से साहित्य का संबन्ध जानने के लिए नाट्यशास्त्र का सहयोग लिया जाता, जिसका आधार वैदिक यज्ञसंस्था है। नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त जग्राह पाठ ऋग्वेद का स्वभाव है, गीत सामवेद का स्वभाव, अभिनय यजुर्वेद का स्वभाव और रसास्वाद अथर्ववेद का स्वभाव। इस समायोजन से ज्ञात होता है कि भारतीय साहित्य में आरंभ से ही पाठ, गीत, अभिनय और रस चारों ही सृजन के अंग रहे हैं। सर्वविदित है कि महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण का पाठ्य, गेय और अभिनेय तीनों है। वैदिक यज्ञों में प्रचलित स्वांग ही लोक नाट्य परंपरा की आदि प्रेरणा है। वैदिक यज्ञ काल से आज तक विवाह आदि सांस्कारिक अनुष्ठानों में मंत्रों के साथ गीत और अभिनय प्रचलित है। इन अनुष्ठानों में वेदाचार और लोकाचार दोनों एक साथ होते हैं। क्षेत्रीय विशेषताओं के अनुरूप लोकाचार परिवर्तित होता है, किन्तु वेदाचार लगभग एक ही रहता है। इसी पारंपरिक स्त्रोत से हमारी संस्कृति अग्रसर हुई, आज भी उसमें लोक और शास्त्र एक साथ गतिमान हैं। यही स्थिति भाषा में भी दिखाई देती है।

भाषा में ही नहीं अपितु व्यवहार में भी वैदिक और लौकिक का अटूट संबन्ध है। जैसे धरती सूर्य से प्रकाशित है, लोक वेद से भासमान है। कालिदास की पँक्ति है- 'वसुधा तलात न रुदेति प्रभातरलं ज्योति' अर्थात भूमि से ज्योति नहीं निकलती, धरती ज्योति के लिए सूर्य पर निर्भर है। सूर्य की ज्योति भी धरती के बिना साकार नहीं होती। इसी प्रकार वेद को लोक साकार और प्रत्यक्ष बनाता है। वेद ने लोक चित्त को अनुप्राणित किया है।

यह सच है कि भरोसे की भाषा तभी बनती है जब वह सत्यनिष्ठ और आत्मीय हो। यदि वेद लोक में नहीं होता तो सब ओर अँधेरा ही होता। लोकजीवन में ही वेद का व्यवहारिक पक्ष स्थापित होता है। वैदिक और लौकिक के अभेद संबन्ध को शौनक के वृहद्देवता और यास्क के निरुक्त आदि ग्रंथों में देखा जा सकता

28 उत्तरमेघ – 26

है। शौनक कहते हैं कि वैदिक को लौकिक बना लेना चाहिए।[29] यास्क के अनुसार- अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्[30] अर्थात वैदिक और लौकिक वाक्यों में शब्दों की समानता होने कारण वे मंत्र अर्थयुक्त होते हैं। वस्तुतः अर्थ शब्द पार्थिव का पर्याय है। शब्दों के अर्थ को लोकाश्रित माना गया है। व्याकरण का सिद्धांत हैं कि शब्दों के लिंग निर्णय के लिए नियम की आवश्यकता नहीं है, लिंग लोक व्यवहार से निर्णित होता है- लिंगमशिष्यम्। लोकाश्रयत्वाल्लिंगस्य।

प्रश्न यह है कि वर्ग संघर्ष के लिए मार्क्समार्गियों ने संस्कृत बनाम प्राकृत के जिस भाषायी विभेद को हथियार बनाया, उसकी पृष्ठभूमि में अँग्रेज के आर्य बनाम अनार्य द्वन्द्व सिद्धान्त विद्यमान है, तब उन्हें साम्राज्यवाद का विरोधी कैसे कहा जा सकता है?

भाषा भेद के कर्मठ कार्यकर्ता ग्रियर्सन ने प्राकृत और संस्कृत के बीच चीरा लगाते हुए लिखा है कि 'प्राकृत का अर्थ है- संस्कृत, सँवरी हुई, नकली भाषा से भिन्न, सहज अकृत्रिम भाषा। प्राकृत की इस व्याख्या से यह परिणाम निकलता है कि वेद मंत्रों के संकलनकर्ता ब्राह्मणों ने इन मंत्रों में अपेक्षाकृत कृत्रिम संस्कृत भाषा सुरक्षित रखी है। वेद मंत्रों के समय की बोलचाल की भाषाएँ वास्तव में प्राकृत थी।' इस कथन को रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भाषा और समाज' में उधृत कर बताया है कि 'ग्रियर्सन ने वैदिक भाषा की कृत्रिमता सिद्ध करने के लिए कहीं उसका विश्लेषण नहीं किया। उसकी स्थापना का आधार प्राकृत-संस्कृत शब्दों का अस्तित्व और अर्थ भेद है। भले ही वैदिक काल में संस्कृत शब्द का चलन भाषा के संदर्भ में न रहा हो, ग्रियर्सन ने प्राकृत-संस्कृत का भेद उस समय के लिए भी सत्य माना है'।[31]

पाणिनीय शिक्षा यह बतलाती है कि प्राकृत और संस्कृत दोनों में आधार वर्णों की संख्याएँ समान हैं। इनकी कुल संख्याएँ तिरसठ या चौसठ होती हैं। संस्कृत के विद्वानों में भी प्राकृत और संस्कृत को लेकर एक मान्यता नहीं है, कुछ विद्वान संस्कृत को प्राकृत का ही संस्कारित रूप मानते हैं और कुछ संस्कृत को मूल पूर्ववर्ती भाषा मानते हैं तथा प्राकृत को परवर्ती अपभ्रंशित भाषा। लेकिन, वैदिक भाषा के स्वरूप में विरोधाभासी मान्यताओं का समाहार हो जाता है।

यहाँ हमें वैदिक भाषा से उदाहरण लेना चाहिए जिससे वेद और लोक का भाषिक संबन्ध ज्ञात हो सके। ऋग्वेद का एक वाक्य है- का इमाम इन्द्रं दशभिर्धेनुभिर्माम क्रीणाति[32], इस वाक्य का सामान्य अर्थ है- दश गौओं से इन्द्र को कौन खरीदेगा? क्री धातु से बना क्रीणाति शब्द क्रीणीते भी होगा, यही शब्द लोक भाषाओं में 'कीन' कीनना बन गया है। कीनना और खरीदना एक ही शब्द के दो उच्चारणों के नमूने हैं। बिमल मित्र के सुप्रसिद्ध बांग्ला उपन्यास 'कौड़ी दीए कीनलाम' का हिन्दी संस्करण है- 'खरीदी कौड़ियों के

29 वृहद्देवता - 2.101

30 निरुक्त -1.5

31 भाषा और समाज - पृष्ठ 191-192

32 ऋग्वेद 4.24.10

मोल' आशय यह कि कौड़ी देकर कीना या खरीदा। कीन शब्द क्रीणीते शब्द से बना है, इसमें ण का न बन गया है और अन्य वर्णों का लोप हो गया है, लेकिन, खरीद शब्द में क का ख हो गया, आधे र का पूरा र, र के साथ ईकार के आने से री, त का द और ण का लोप हो गया। इससे खरीद और कीन दोनों शब्दों का वैदिक शब्द से संबन्ध स्पष्ट होता है। वर्णों और शब्दों में होनेवाले रूपान्तरण का सर्वसमावेशी आधार अक्षर है। यह भाषा की अद्वैत भूमि है, इसमें सर्व की भाषा का एकात्म तत्त्व है जहाँ सब में सभी हैं।

वैदिक भाषा में संस्कृत और प्राकृत के बीच कोई भेदक रेखा नहीं खींची जा सकती, क्योंकि वह भाषा सृष्टि में संन्नद्ध है, छन्दस् है, स्वर है, लय-ताल युक्त संगीत है, यह संसृति सरिता की लहरों के संग-संग बहती है और प्रत्यक्ष प्रकरण बन जाती है- सं सं स्रवन्ति सिन्धवः। वैदिक भाषा में रश्मि है, दिव है, दृश्य है दिक् है, दृग और दृङ जैसे प्रकाश तरंगों के साथ थिरकने वाले शब्द और ध्वनियाँ है। वैदिक ऋचाओं के शब्दों के वर्ण अपने ध्वनि और रश्मि दोनों पक्षों से गतिमान होते हैं, इनमें ज्योति के भीतर बजनेवाले रश्मि-कणों की ध्वनियाँ भी सुनी जा सकती है- ज्योति-क्रीड़ा देखी जा सकती है, इसमें श्रव्य और दृश्य के रेखाकार निहित हैं, इन्हें संख्या में गिना जा सकता है।

वैदिक भाषा को सृष्टि के समानान्तर या सृष्टि में समाहित माना जाता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वेद त्रयी की भाषा सर्वभूतात्मक है, उसमें सारे अस्तित्व समाहित हैं- त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि..[33], सूर्य ही वागग्नि का स्रोत है, त्रयी विद्या सूर्य में तपती है, सूर्य ही बुनियाद है- तस्यैषा प्रतिष्ठा।[34] इस कथन का अभिप्राय यह है कि भाषा की त्रिधा संरचना- तीन काल, तीन लिंग, तीन वचन इत्यादि त्रयी विद्या से प्रसूत हुई है और यह त्रयी है- सूर्य की अग्नि का त्रिकात्मक स्फोट। त्रयी की प्राण-ध्वनि सभी जीवों की वाणी बन गई है। इसलिए प्राणिमात्र में व्याप्त वेद त्रयी की भाषा को प्राकृत और संस्कृत में विभेदित करना ग्रियर्सन की भारी धृष्टता है।

वाक्य पद में, पद वर्ण में और वर्ण भी नाद-बिन्दु में लय होते हैं, ऋचाएँ सामगान बन जाती हैं। सामगान में पद और अर्थ की प्रधानता नहीं होती, सार्थक और निरर्थक पदों का भेद नहीं होता, बस ऋचाओं में निहित अक्षर की प्रधानता होती है। अक्षरतंत्र का कथन है- अनृगाद्यक्षरम्, अर्थात सामगान में प्रयुक्त सार्थक और निरर्थक सभी पद अक्षर हैं। अक्षर ही शाश्वत आधार है, अक्षर से ही पद सृजित होते हैं और वही पद विषय की सापेक्षता से कहीं सार्थक तो कहीं निरर्थक बन जाते हैं।

अक्षर की स्थापना के कारण ही 'सब में सभी है' की धारणा बनी- सर्व सर्वात्मकम् (पातञ्जलि योगसूत्र)। भाषाओं में या शब्दों में ही नहीं, वर्णों में भी अक्षर ही सर्वत्र एकात्म भाव से स्थित है। पतञ्जलि कहते हैं- जात्यानुच्छेदेन सर्व सर्वात्कम्-एकात्मता तब प्रकट होती है जब वर्णों की निजी पहचान अक्षर में

33 शतपथ ब्राह्मण- 10. 4. 2. 22

34 शतपथ ब्राह्मण- 10.4.2.28

विलीन हो जाती है, इस सूत्र के अनुसार जबतक 'क' वर्ण की निजी सत्ता स्थिर है, तभी तक 'क' है, अन्यथा 'क' का रूपान्तण ख, ग, घ, ल इत्यादि किसी वर्ण में संभव है, उच्चारण भेद से वह कोई दूसरा वर्ण बन सकता है।

वेद के दिक्कालिक स्वरूप को नहीं जानने के कारण ही उसकी भाषा को संस्कृत और प्राकृत के दो धड़े बनाए गये, इनके बीच दीवार खड़ी की जाने लगी, यह नहीं देखा गया कि कैसे निरंतर इनमें परस्पर रूपान्तरण होता रहा है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर भारतीय भाषाएँ परस्पर पूरक बन हजारों से अनेक छटाओं में प्रवाहमान रहीं। अँग्रेजों ने भाषा सर्वेक्षण द्वारा भाषा की भारतीय अवधारणा तोड़कर उन्हें विभेदों में प्रस्तुत किया और समाज-मानस को खण्डित करने का यत्न किया।

भाषाओं की सहयात्रा

संस्कृत और प्राकृत ने सतत सहयात्रा की है। प्राकृत संबन्धी पालि, महाराष्ट्री, शौरसैनी, मागधी, पैशाची एवं अपभ्रंश आदि भाषाएँ भी सहयात्री रहीं। इनमें परस्पर आदान-प्रदान होता रहा। इनके साथ संस्कृत भी प्रयुक्त होती रही। इन भाषाओं में से पालि बौद्धधर्म के साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त हुई। पालि साहित्य रोमन, सिंहली, बर्मी, स्यामी आदि लिपियों में भी मिलता है। बौद्ध साहित्य में संस्कृत के प्रयोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं, उदाहरण के लिए ललित विस्तर और सद्धर्म पुण्डरीक इत्यादि ग्रंथों का नाम लिया जा सकता है। बौद्ध त्रिपिटक के धम्मपद की भाषा प्रधानतः पालि और अंशतः संस्कृत है। बौद्ध साहित्य में पालि और संस्कृत की तरह अपभ्रंश भाषा भी प्रयुक्त हुई। अपभ्रंश में लिखे हुए बौद्धों के सामितीय मत का एक त्रिपिटक है। स्पष्ट है कि भाषाओं के मध्य संगमन को भाषा की भारतीय अवधारणा ने सर्वदा महत्त्व दिया। यह अवधारणा भाषाओं के विकास में सहायक बनी और सर्वसंवादी साहित्य के सृजन की प्रेरणा भी।

भाषाओं के विकास की सहयात्रा की भाँति साहित्यिक रचनाओं में भी संस्कृत और प्राकृत अथवा अपभ्रंश के प्रयोग एक साथ हुए हैं। रहीम की रचना खेटकौतुकम् में संस्कृत के साथ हिन्दी का प्रयोगजन्य कौतुक देखा जा सकता है-

शरद निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुञ्जे स्याम बंसी बजाई ।
रतिपति सुत निन्द्रा साइया छोड़ भागीं।
शिरसि भूयः क्या बला आन लागी।।

संस्कृत की रंगत वाली साहित्यिक भाषा गुजराती के पुराने कवियों की रचनाओं में भी मिलती है-

पीन पयोधर ओपतां जाणे कंचन कुंभ।
बलिहारी भुजदंडिनी भाज्यां दैत्यानां दंभ।। (भालण, 1439-1539)

संस्कृत और प्राकृत अथवा अपभ्रंश की सहयात्रा नाथों, संतों की वाणी में भी देखी जा सकती है-

सारमसारं गहन गंभीरं गगन उछलिया नादं।
मानिक माया फेरि लुंकाया झूठा बाद-बिबादं।। (गोरखबानी)

तुलसी की लोकप्रिय रचनाओं की भाषा में भी अनेक स्थलों पर इसी प्रकार की शब्द योजना है-

श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनि चीरं।।

विद्यापति की रचनाओं में संस्कृत कवि जयदेव जैसी शब्द योजना देखी जा सकती है-

कुसुमित कानन कालिन्द तीर। तहं चलि आयल गोकुल वीर।।

इस तरह की शब्द योजना असमिया के महाकवि शंकरदेव की रचनाओं में भी है –

परमात्म हरि विज्ञान मूरति निराकार निरामय।
नित्य निरंजन आनंद स्वरूप देहिन्द्रिय नाहि काय।।

बंकिम चन्द्र की सुप्रसिद्ध रचना वंदे मातरम् -'सुजलां सुफलां' में 'की बोले तुमी अबले' का बंगला प्रयोग इसी तरह का है। ऐसी रचनाओं की भाषा को अन्तर्भाषिक चरित्र के कारण स्थानिक पहचान और अखिल भारतीय स्वीकृति मिली।

संस्कृत और हिन्दी के मध्य सेतु की भाँति कार्य करनेवाली अपभ्रंश भाषा उत्तर भारत में छठी शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक प्रचलित रही, इससे हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला इत्यादि भाषाओं का विकास हुआ, इसलिए इन भाषाओं के शब्दों में क्रमिक विकास दिखाई देता है। जैसे- संस्कृत शब्द 'अद्य' का प्राकृत या अपभ्रंश उच्चारण- 'अज्ज' है और हिंदी में 'आज'। लोक भाषाओं और आधुनिक भारतीय भाषाओं में उच्चारण और प्रत्यय भेद के साथ अनेक रूपों में समान शब्दों का प्रयोग होता है। इसी आधार पर संत कवियों की रचनाएँ क्षेत्रीय भाषाओं के उच्चारण में यात्रा करती हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में जैसा अन्तर दिखता है, लोक भाषाओं में नहीं है, ये एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। अवधी से पूरब चलें तो क्रमशः भोजपुरी, बज्जिका, मैथिली, बंगला, असमिया आदि में अन्तर और एकत्व की छटाएँ दिखेंगी, इसी प्रकार अवधी से दक्षिण चलें तो कुछ परिवर्तन के साथ बुंदेली, बघेली से छत्तीसगढ़ी जुड़ी हुई मिलेगी। छत्तीसगढ़ की एक भाषा रूप कलिंगा ओड़िया से जुड़ा हुआ है, दूसरा बस्तर का भाषा रूप हाल्वी तेलगु के निकट पहुँचता है।

भाषाओं के संगमन से आर्य और द्रविड़ भाषाओं के बीच बनाए गए परिवार भेद की दीवारें टूटती हैं। आर्य और द्रविड़ भाषाओं में शब्द के तत्सम रूपों से ही नहीं, अपितु तद्भव रूपों से भी एकत्व देखा जा सकता है। संस्कृत शब्द अन्य का द्रविड़ उच्चारण अन्नि, इह का ई, अत्र का इकड़, इधर (हिन्दी) तत्र का अकड़, उधर (हिन्दी), मनुष्य का मनजुडु, गौ का औ इत्यादि। वर्णों के उच्चारण में भेद और विशेष प्रत्यय प्रयोग से भाषाओं में अन्तर आना स्वाभाविक है, जैसे- आव (आना) का द्रविड़ में संक्षिप्त उच्चारण है- वा। द्रविड़ भाषाओं में प्रत्यय का अन्तर होता है, जैसे- दैवम्-दय्यमु, नीर-नीलु, अन्तः-अन्दु (अन्दर)। संस्कृत

शब्द अन्तःपुर से द्रविड़ अंतप्पु, शर्करा से चेक्कर और हिन्दी में शक्कर इत्यादि बनते हैं, इनमें प्राकृत की तरह विसर्ग या रेफ के बदले अगला वर्ण संयुक्त हो जाता है, जैसे धर्म का प्राकृत धम्म, कर्म का कम्म इत्यादि।

वस्तुतः भारत में एक ही भाषा परिवार है जिसकी बनावट में एक तन्तु लोक भाषाओं के विविध तद्भव शब्द रूपों की है और दूसरी तन्तु तत्सम शब्द रूपों की। यही कारण है कि निरुक्त सभी प्रकार के शब्दों का निर्वचन करता है और व्याकरण व्युत्पत्ति। यह शास्त्रीय दृष्टि भारतीय भाषाओं में एकत्व स्थापित करती है। पाणिनि व्याकरण के ज्ञाता मानते हैं कि भारतीय भाषाओं का एक व्याकरण बनाया जा सकता है। इन तथ्यों से ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की यह धारणा व्यर्थ हो जाती है कि द्रविड़ भाषा परिवार फिनलैण्ड से आयी है।

अखिल भारतीय भक्ति आन्दोलन का साहित्य और संतों की भाषा, संवेदना और ज्ञान किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहे, अपितु स्थानिक पहचान के साथ विचरण करते रहे। संतों ने भाषा से अधिक ज्ञान को महत्त्व दिया। तेलगु के संत कवि वेमन कहते है- घड़े को कुंभ, पहाड़ को पर्वत, नमक को लवण कहने पर भी भाव एक ही रहता है, वैसे ही भाषाएँ अलग-अलग हो सकती हैं परन्तु परमतत्त्व एक ही है-

कुंड कुंभ मन्न, नप्पु लवण मन्न, नोकटि गादे। भाष लिट्ले वेरु, परतत्त्व मोक्कटे।

वेमन और कबीर के अनेक कथनों में अद्भुत समानता है। वेमन का कथन है- जल में डुबकी मारने वाला व्यक्ति निर्मल आत्मा वाला नहीं हो जाता, पानी का मुर्गा तो सदा पानी में ही रहता है-

नील्लु मुनुगुवाडु निर्मलात्मुडु, नीरू कोडि नील्लनु मुन्गदा।

कबीर कथन है-

नहाए धोवाए क्या भया जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में बसे धोए बास न जाय ।।

भारतीय भाषाओं में एकात्मता की संसिद्ध संस्कृत के प्रतिनिधित्व में अन्तर्भाषिक सम्बन्धों के निर्णय से होता है।

भाषाओं की सहयात्रा शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में भी प्रचलित थी, किसी एक भाषा की बाध्यता नहीं थी। भाषा के पहले ज्ञान को प्रधानता दी जाती थी। विद्यार्थियों की भाषा में शिक्षा देने वाले गुरु को महत्त्व मिलता था। कहा गया है कि

संस्कृतैः प्राकृतैर्वाक्यैर्यः शिष्यमनुरूपतः ।
देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत्स गुरुः स्मृतः ।।[35]

भाषा की भारतीय अवधारणा में भाषाओं के प्रकृति प्रदत्त विविध गुणों को यथास्थान प्रतिष्ठित किया

35 व्यवहार-तत्त्वम्, विष्णुधर्मोत्तरपुराण

जाता है। कविकुल गुरु कालिदास ने कुमारसम्भवम् में वागर्थ के विग्रह शिव-पार्वती के विवाह के अवसर पर सुगम पदावली की प्राकृत वाणी से पार्वती के लिए और प्रकृति-प्रत्यय युक्त संस्कृत वाणी से शिव के लिए सरस्वती द्वारा मंगल गान करने का वर्णन किया है-

द्विधाप्रयुक्तेन च वाङ्मयेन सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं वधु सुखग्राह्यनिबन्धनेन।।[36]

अर्थात संस्कृत और प्राकृति को वागर्थ के विग्रह शिव-पार्वती की भाँति अभिन्न माना गया है।

भूमंडलीकरण के बाद विश्व भर की भाषाएँ ग्लोबल गाँव की भाषा बन गई हैं, वैदिक धारणा की तरह पृथ्वी को संचार माध्यमों ने भाषाओं का एक घर बना दिया है, अर्थात अद्यतन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भाषाओं को एकात्म दृष्टि से देखने-दिखाने वाली भाषा की भारतीय अवधारणा ही प्रासंगिक है। इसका सत्यापन आधुनिक भारत में तब हुआ जब भाषा विभेद के औपनिवेशिक हथियार से भारत की अस्मिता को काटने का प्रयास किया गया।

भारत की धमनियों में भाषाओं की एकात्मता भाषा की भारतीय अवधारणा के कारण ही प्रवाहमान है। यह अनेक स्तर पर सक्रिय होकर राष्ट्र के एकात्म स्वरूप का दर्शन कराती है। यह अवधारणा वैदिक युग से निरंतर चली आ रही है। ऐसे मंगलमय आप्त ज्ञान के अद्यतन विनियोग से भाषा क्षेत्र की औपनिवेशिक ग्लानियों को मिटाने का सतत कार्य करना होगा।

●●●

36 कुमारसम्भवम् -7.90

भारतीय ज्ञान परम्परा के ऐतिहासिक साक्ष्य और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020

डॉ. हर्षमणि सिंह[1]

शिक्षा, मानव के व्यक्तित्व निर्माण का सार है, जो देश के सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने को संतुलित करने में महत्वपूर्ण और उपचारात्मक भूमिका निभाती है। एक अधिक जनसंख्या वाले देश को अपने नागरिकों को बेहतर गुणवत्ता वाला जीवन देने के लिए मौलिक शिक्षा के रूप में विकास और देखभाल की आवश्यकता है। इसके लिए उनका समग्र विकास आवश्यक है, जो कि शिक्षा की मजबूती नींव के निर्माण से किया जा सकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा न कि मात्रात्मकतापूर्ण शिक्षा नई खोजों, नए ज्ञान, नवाचार एवं उद्यमिता का आधार है, जो व्यक्ति के साथ-साथ देश के विकास एवं समृद्धि की शुरुआत करती है। भारतीय शिक्षा पद्धति कैसी हो? शिक्षा के पाठ्यक्रम और अध्यापन कार्य को समाज एवं अर्थव्यवस्था के हिसाब से संयोग करने की आवश्यकता है। जो कलात्मक सोच और निर्णय लेने की योग्यता और आत्मविश्वास पैदा कर सके।

हमारे पुरखों ने श्रुतियाँ (सुनकर ज्ञान को आत्मसात् करने की परम्परा) जिन्हें वेद की संज्ञा दी गई के माध्यम से शिक्षा अर्जन के क्रम को आगे बढ़ाया। श्रुतियाँ जीवन के आश्चर्य और भय से समाविष्ट जन समाज की भावनाओं की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हैं, अपने सरल विश्वास से सब ने प्रकृति के हर शक्ति, हर तत्त्व में देवरूप देखा। ये विश्वास, साहस और आनंद से भरा ज्ञान था, जिसने रहस्यमय विचारों से जीवन में आह्लाद उत्पन्न किया।

गुप्तकाल भारतीय शिक्षा और दर्शन की दुपहरी का बोध कराता, जहाँ अब तक अर्जित ज्ञान का प्रकटीकरण देखने को मिलता है। गुप्तकाल में नालन्दा विश्वविद्यालय प्रारंभ हुआ, जो हर्षवर्धन के समय संसार-भर में विख्यात हुआ। ह्वेनत्सांग लिखता है कि वहाँ दस हजार विद्यार्थी पढ़ते थे और सौ विद्वान एक साथ विविध विषयों पर व्याख्यान देते थे। यहाँ प्रवेश बड़ा कठिन था। एक से एक पण्डित-आचार्य पढ़ाने का काम करते थे।

इस प्राचीन शिक्षण व्यवस्था में शिक्षक, छात्र व पाठ्यक्रम की त्रयी में गुणात्मक भेद की जानकारी का समन्वय था। शिक्षक व छात्र को आश्रम व्यवस्था के माध्यम से समाज से अलग रहकर शिक्षा दी जाती

1 सहायक आचार्य (अर्थशास्त्र), ईश्वर शरण कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

थी। शिष्य भिक्षावृत्ति से जान पाता था कि समाज की समस्यायें क्या हैं। भिक्षावृत्ति से कुंठा समाप्त हो जाती थी। वहीं समाज की एक जिम्मेदारी का उद्‌बोध यहीं से होता था और समाज ही शिक्षा पर व्यय का वहन करता था। इस दौरान लिखी गई पुस्तकें, काव्य और महाकाव्य इस बात के जीवंत चलचित्र हैं कि इस त्रयी में कोई रिसाव नहीं था, उस समय के समाज का विद्या-दर्शन उच्च कोटि का था।

19वीं सदी के आरंभिक वर्षों में ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार ने शिक्षा को अपने औपनिवेशिक हितों के अनुकूल बनाने के लिए समाज द्वारा संचालित परंपरागत शिक्षा-प्रणाली में हस्तक्षेप किया।

औद्योगिक क्रांति के पश्चात् उत्पादन की नई प्रणाली विकसित हुई, जिसका परिणाम उपनिवेशवादी व्यवस्था थी। इस काल-खण्ड में प्रारम्भ में मिशनरियों ने शिक्षा का प्रसार किया, लेकिन इसके मूल में उन्होंने धर्म प्रचार को ही आधार बनाया। आधुनिक शिक्षा का आरंभ तब हुआ जब अनेक भारतीय यह अनुभव करने लगे कि आधुनिक युग की चुनौतियों का सामना करने के लिए आधुनिक शिक्षा आवश्यक है। नतीजा, शिक्षा-संस्थाएँ खुलवाने के लिए सरकार पर दबाव डाले गये। कलकत्ता शहर इस अगुवाई का केन्द्र बना, 1817 में कलकत्ता में हिन्दू कॉलेज की स्थापना हुई। राजा राममोहन राय और डेविड हेयर जैसे अनेक उदारवादी यूरोपीय लोग इस कॉलेज की स्थापना से जुड़े। कलकत्ता में एक बौद्धिक वातावरण बना। इसके पश्चात् आधुनिक शिक्षा देने के लिए अनेक भारतीयों ने स्कूल कॉलेज खोले।

इसके बावजूद मिशनरियों, ब्रिटिश सरकार, भारतीयों और उनके संगठनों सभी की गतिविधियों के बावजूद शिक्षा थोड़े से वर्ग तक सीमित रही।

प्राथमिक शिक्षा की अनदेखी करने और परम्परागत शिक्षा प्रणाली जिसमें गणित और पढ़ना-लिखना जैसा बुनियादी ज्ञान शामिल था, उसकी अनदेखी करने के कारण भारतीय जनता का एक बहुत बड़ा भाग निरक्षर हो गया। कुल मिलाकर इस शिक्षा व्यवस्था ने अधिगम के बजाय वर्ग-विभेद पैदा किया। समाज अंग्रेजी भाषा के जानकार और मातृ-भाषा के पोषक के रूप में बंट गया।

हम शायद ही इस बात से इंकार कर पायें कि जब देश की शिक्षा व्यवस्था को विकसित करने का मौका मिला तो उस पर उपनिवेशवाद की छाया प्रभावी रही। सन् 1887 में स्थापित इलाहाबाद विश्वविद्यालय की पहचान अपने शताब्दी वर्ष में भी 'पूर्व की ऑक्सफोर्ड' के रूप में ही व्यक्त की जाती रही।

आज हम सभी जानते हैं कि वाशिंगटन सहमति के पश्चात् शिक्षा प्रदाता के संस्थानिक मूल्यों में परिवर्तन आया है, चाहे वह 'राज्य' हो या फिर 'राज्य की वैकल्पिक संस्था' अब शिक्षा बाजार के नियम की अनुगामी है। जिसे मानव विकास सूचकांक की अवधारणा के आधार पर 1990 में विकसित किया गया, जिसमें विकास की जीडीपी आधारित अवधारणा स्वीकार की गई, इसी अनुसरण में शिक्षा को नामांकन अनुपात और रेटिंग के पैमानों पर कसने का पूरा संकाय निर्मित किया गया, जो श्रुतियों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था के दर्शन और बौद्धिक मानकों के विपरीत है।

विकास की जीडीपी मापक अवधारणा प्रयोग में लाने पर इसका प्रभाव हमारे मनोविज्ञान पर पड़ता है। विकास की जो अवधारणा जिसे डा. महबूब-उल-हक़ और प्रो. अमर्त्य सेन ने प्रतिपादित किया, इसके मापक हैं स्वास्थ्य, संसाधनों तक पहुँच और शिक्षा। इस लिहाज से शिक्षा विकास का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। उदारीकृत बाजार व्यवस्था का मॉडल अपनाने के बाद भारत में प्रौढ़ साक्षरता दर और सकल नामांकन अनुपात ज्ञान तक पहुँच को प्रदर्शित करते हैं। पढ़ और लिख सकने वाले वयस्कों की संख्या और विद्यालयों में नामांकित बच्चों की संख्या दर्शाती है कि किसी देश विशेष में ज्ञान तक पहुँच कितनी आसान अथवा कठिन है। नामांकन अनुपात बढ़ने से ही ज्ञान तक पहुँच बढ़ाना संभव नहीं है। इसके लिए सकल नामांकन अनुपात को बढ़ाने के साथ सकल ड्राप आउट अनुपात कम करना होगा।

इस दिशा में भारत के संविधान की धारा 21ए के फलस्वरूप निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लिए बाल अधिकार (आरटीई) अधिनियम-2009 देश में, वर्ष 2010 में लागू हुआ। आरटीई अधिनियम 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को किसी औपचारिक स्कूल में समानता के आधार पर प्राथमिक शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है।

शिक्षा को मानव विकास सूचकांक के एक अहम पड़ाव के रूप में ज्ञान तक पहुँच को मापने के नित-नये पैमाने बनाये जा रहे हैं। Oxford Poverty and Human Development Initiative एवं United Nation Development Programme (UNDP) द्वारा वर्ष 2010 से एक 'बहुआयामी गरीबी सूचकांक' तैयार किया गया। बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) वास्तव में मानव विकास सूचकांक (HDI) को अधिक व्यापक रूप में देखता है, जिसमें ज्ञान तक पहुँच को बढ़ावा देने के लिए निःशुल्क शिक्षा के साथ ही स्कूल में मध्याह्न भोजन देने की व्यवस्था शामिल है, जिससे ड्राप आउट को कम करके औसत स्कूलिंग वर्ष को बढ़ावा मिल सके। ज्ञान तक पहुँच के उपरोक्त प्रयास मात्रात्मक पहुँच को संभव बना रहे हैं, सम्भवतः इस तरह रेटिंग्स प्रणाली में हमें पहले से ऊँचा दर्जा भी प्राप्त हो जाए, परंतु दूसरे पड़ाव जो शिक्षा को उस देश की संस्कृति-आचार-विचार, अर्थव्यवस्था को समावेशित करते हुए संबल प्रदान करते हैं की अनदेखी ही की जा रही है।

वर्ष 1995 में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद से शिक्षा को सेवा वर्ग में मान लिया गया है। विश्व व्यापार संगठन ने भारत जैसे विकासशील देशों के लिए इसके माध्यम से अनेक रोजगार के अवसर सृजित होने की पैरवी की। सेवा व्यवहारों को चार प्रविधि में तारांकित किया गया है।

प्रविधि-1 के तहत सेवा उत्पाद का भौतिक गमन भौगोलिक सीमा के आर-पार होता है। इसके उदाहरण सूचना युक्त पेन ड्राइव, बिजनेस प्रासेस आउटसोर्सिंग, नॉलेज प्रासेस आउटसोर्सिंग आदि आते हैं। इसका फायदा भारत को दुनिया भर के BPOs के आने से हुआ। गुरुग्राम, बेंगलूरु जैसे शहर कम समय में ही सिलिकॉन वैली का दर्जा प्राप्त कर सके। इससे भारत में रोजगार के अवसर बढ़े। भारतीय विश्वविद्यालय

KPOs के माध्यम से आगे बढ़ें तथा विनिर्मित प्रणाली में योगदान दें तभी यह मॉडल भारत के अनुकूल कहा जा सकता है अन्यथा जितने रोजगार के अवसर सृजित हो रहे हैं उससे ज्यादा कम हो रहे हैं जो भारत में शिक्षित बेरोजगारी के आंकड़े प्रदर्शित करते हैं। प्रविधि-2 के अंतर्गत निर्यातक देश में उपभोक्ताओं का गमन जैसे किसी सेवा निर्यातक देश में डाक्टर की सेवाओं को प्राप्त करने के लिए स्वयं बीमार व्यक्ति का निर्यातक देश को जाना। इसे आसान भाषा में मेडिकल पर्यटन भी कहा जाता है। इस क्षेत्र में विकास की अधिक संभावनायें हैं। प्रविधि-3 के अंतर्गत जिस देश में सेवा उपलब्ध करानी हो उस देश में एक पूर्ण इकाई फ्रेंचाइजी के रूप में स्थापित करना। इस प्रविधि में पूँजी की गतिशीलता भी सम्मिलित होती है। भारत को हाल के वर्षों में आयुष, योग, भारतीय दर्शन, भारतीय संस्कृति के प्रसार का अवसर प्राप्त हुआ। लेकिन नवप्रवर्तक युवा इस ओर किस प्रकार आकृष्ट हों इसकी रणनीतिक रूपरेखा पर काम करना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 इस नये इकोसिस्टम के अनुकूल है। भारतीय नीति-निर्माताओं को जननांकिकीय लाभांश का अगर लाभ मिले तो शिक्षा नीति में यह परिवर्तन आत्मविश्वास पैदा करेगा, अन्यथा ब्रांडिंग के बावजूद शोध के अभाव में हम इसका लाभ नहीं ले पायेंगे। प्रविधि-4 में श्रम की गतिशीलता आती है। इसे भारत की विनिर्माण की आपूर्ति शृंखला से जोड़ा जाना चाहिए।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था का अनुक्रम भारतीय अर्थव्यवस्था के आय के प्रवाह के सहायक के रूप में विकसित होना चाहिए। यह लोक व्यवहार की आत्मस्फूर्ति और परिपूर्ण प्रणाली है। नई शिक्षा नीति इस गतिरोध को संतुलन में लाने का प्रयास करती है। शिक्षक, छात्र, पाठ्यक्रम की त्रिविमीय संरचना समय के साथ बदलाव से गुजर रही है। शिक्षक बनाम छात्र दोनों युग्मों में एक नये संतुलन की आवश्यकता है, जिसे छात्र व शिक्षकों को भलीभाँति समझना होगा। तभी हम किसी नये पाठ्यक्रम पर काम कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण से भाषा एक मुख्य सहायिका है। वास्तव में, संकट के समय मुख से निकलने वाली प्रार्थना की भाषा हमारी मातृ भाषा है। हमारी 05 मातृकायें इसका उद्घोषक है, धरती माता, स्त्री माता, गाय माता, नदी माता और मातृ भाषा। शिक्षा मातृ भाषा में ही उत्कृष्ट परिणाम देती है।

अर्न्तअनुशासन संकाय

विषयगत अलगाव के विपरीत समावेशी पाठ्यक्रम नई शिक्षा नीति का अभिन्न अंग है। इसे मिलाकर देखने से देश-काल को समझने में स्पष्टता आती है। इसे 03 उदाहरणों से समझा जा सकता है।

इस तरह की अन्तरअनुशासन संकाय शिक्षा की समावेशी रूप का प्रयोग नया नहीं है। अखिल भारतीय स्तर की प्रशासनिक सेवाओं और कुछ राज्यों की प्रांतीय प्रशासनिक सेवाओं में इस तरह के पाठ्यक्रम को ही आधार बनाया गया। इस दिशा में पाठ्यक्रम को अद्यतन करने व भाषा के विकल्प की स्वतंत्रता से इसे आगे बढ़ाया जा सकता है।

संदर्भः

1. भारत : 2019, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
2. मित्तल सतीश चंद्रः 2018ः प्राचीन भारतीय इतिहास की गौरवशाली झलकियांः अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, इलाहाबाद।
3. सिंह, हर्ष मणिः 2022ः उदीयमान भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास एवं आयोजनः लोकवाणी पब्लिकेशन, प्रयागराज।
4. उपाध्याय भगवतशरण : 2022, भारत की संस्कृति की कहानी : राजपाल एंड संस पब्लिकेशन।
5. चिकरमानी गौतम : 2022, रिफार्म नेशन फ्रॉम द कांसंट्रेटस ऑफ़ पी.वी. नरसिम्हाराव टू द कन्विक्शन ऑफ़ नरेन्द्र मोदी : हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स।
6. पंडित मोहन जय : 2023 : इम्पोर्टेंस ऑफ़ मेंटल हेल्थ इन द एकेडमिक वर्ल्ड : बिजनेस लाइन
7. तिवारी कपिल : 2021, लोक जीवन में भारतीय चेतना, अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, इलाहाबाद।

●●●

राष्ट्रीय शिक्षा नीतिः सम्भावनाएँ एवं चुनौतियाँ

अशोक मेहता[1]

स्वराज प्राप्ति के बाद हम शिक्षा को बदलने की तैयारी किये और उसके लिए प्रयत्न हुए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर रह चुके शिक्षाविद् डॉ. राधाकृष्णन ने 1948 में हायर एजुकेशन पर रिपोर्ट दी।[2] उसके बाद 1952-53 में मुदालियार रिपोर्ट।[3] 28 दिसम्बर 1953 को यू.जी.सी. की स्थापना और 1956 में अधिनियमित होना।[4] फिर 1964 में कोठारी आयोग[5], उसने काफी कुछ काम किया। 1986 नेशनल पॉलिसी ऑफ एजुकेशन, 1990 में पॉलिसी में मेजर अमेंडमेंट।[6] 1992 जनार्दन रेड्डी रिपोर्ट के आधार पर व्यापक संशोधन।[7] वर्ष 2002 में शिक्षा का अधिकार, 2010 में उसका प्रवर्तन।[8] 2016 में टीएसआर सुब्रह्मण्यम समिति और 2017-18 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण के लिए के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में दूसरी कमेटी। 2020 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति। इतनी लम्बी यात्रा के बाद हम कहाँ पहुंचे?

आज की शिक्षा केवल डिग्री देती है, ज्ञान नहीं। शिक्षा केवल और केवल नौकरी का माध्यम है। शिक्षा की चाह बस इतनी ही है कि हम ग्रेजुएट हो जायेंगे, इसके बाद हमें नौकरी के लिए न्यूनतम योग्यता मिल जायेगी। जब व्यक्ति यह सोचता है कि मेरे रोजगार, मेरे कार्य में यह ज्ञान एक माध्यम रहेगा, जो मैं सीखूँगा मैं कर पाऊँगा,

---

1 वरिष्ठ अधिवक्ता, इलाहाबाद उच्चन्यायालय, प्रयागराज

2 यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमिशन-राधाकृष्णन कमीशन (1948-49)
(04 नवम्बर 1948 से 25 अगस्त 1949)

3 सेकेण्डरी एजुकेशन कमीशन-मुदालियार कमीशन (1952-53)
(23 सितम्बर 1952 से 29 अगस्त 1953)

4 28 दिसम्बर 1953 को यू0जी0सी0 की स्थापना- यूनिवर्सिटी ग्राण्ड्स कमीशन एक्ट, 1956

5 दौलत सिंह कोठारी आयोग-नेशनल एजुकेशन कमीशन (1964-66)
(14 जुलाई 1964 से 29 जुन 1966)

6 1990 के नेशनल पॉलिसी अमेंडमेंट-नेशनल एजुकेशन पॉलिसी (1986)

7 जनार्दन रेड्डी रिपोर्ट, 22 जनवरी 1992 -संशोधित नेशनल एजुकेशन पॉलिसी

8 2002 में शिक्षा का अधिकार-ऑर्टिकल 21। संविधान (86वाँ) संशोधन अधिनियम 2002 (प्रवर्तन-01 अप्रैल 2010)

ऐसा सोचकर जो सीखता तब वह अपने क्षेत्र का थोड़ा बहुत ज्ञान पाता है। वह लोहार भी हो सकता है, वह लकड़हारा भी हो सकता है, वह घर में कालीन बनाने वाला भी हो सकता है और वह किसी विशिष्ट उद्यम से जुड़ा भी हो सकता है। अन्यथा वह डिग्री उत्पादक है।

यू.जी.सी. ने कह रखा है कि इतने नम्बर ऑफ पेपर्स पब्लिस होंगे तो आपको एसोसिएट प्रोफेसर बनाने के लिए विचार किया जायेगा। आज विज्ञापन होता है और 45 दिन बाद उसके जमा करने की अंतिम तिथि होती है। इन 45 दिनों में 10 पेपर, 8 पेपर, 7 पेपर छप जाते हैं और वे सारे यू.जी.सी. के नियम के अनुसार प्रार्थना पत्र के साथ लगा दिये जाते है।

जितना चाहे उतना पैसा खर्च करके पेपर इंटरनेशनल लेवल के जर्नल में छप सकते हैं, रु. 4000 सबसे कम कीमत है। जो यूजीसी के द्वारा मान्य है उनमें छप जाते है तब उनको सेलेक्शन कमेटी का कोई भी मेम्बर अमान्य नहीं करता है। मेरी शिक्षा आयोग के अध्यक्ष से भी इस विषय में बात हुई। उन्होंने कहा इसे अमान्य नहीं किया जा सकता।

अभी कोराना का काल बीता है। बिना पढ़े, बिना परीक्षा दिये, बिना फेल हुए, वकील भी बने हैं, डाक्टर भी बने हैं और एमबीए भी बने हैं और सारी डिग्रियाँ मान्य हैं। यूनिवर्सिटी कमर्शियलाइज्ड हैं। कुछ यूनिवर्सिटिज ऐसी हैं जो शेयर मार्केट में हैं, नेशनल स्टॉक एक्सचेंज पर रजिस्टर्ड हैं। विश्वविद्यालय के रूप में आप एक बाजार में हैं।

शिक्षा पर बैंक प्राइवेट लोन देता है। उस पर ब्याज लगाता है, उस पैसे से आप फीस का पेमेंट करते हैं। यूनिवर्सिटी इंश्योर करती है कि एक भी बच्चा अगले चार वर्षों में फेल नहीं होगा, चाहे वह किसी भी डिग्री व ग्रेड का हो, क्योंकि वे पाँच लाख, दस लाख, बीस लाख की फीस देने के बाद फेल होने के लिए तैयार नहीं है। यह सच है, इसको ठीक करने की चुनौतियाँ हैं।

के. कस्तूरी रंगन द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप 2020 में संसद द्वारा स्वीकृत हो गया, अब इसे क्रियान्वित करने की चुनौती है।

अब यह समय है सम्भावनाओं के प्रथम चरण का। किस-किस यूनिवर्सिटी के अन्दर क्रियान्वयन प्रारम्भ हो चुका है? क्या-क्या हो चुका है? क्या-क्या होना है? पाठ्यक्रम बन चुके हैं क्या? उत्तर है नहीं। अध्यापकों का उसके अनुरूप अनुकूलन का प्रशिक्षण हो चुका है क्या? उत्तर है नहीं। सभी संकाय के लोगों के हाथ में वो सेलेबस आ चुके हैं क्या? नहीं। क्या 2030 तक हम नयी एजुकेशन पॉलिसी के हिसाब से सारे देश में ग्रेजुएट निकाल लेंगे? क्या 2030 तक प्रत्येक जिले में नयी एजुकेशन पॉलिसी के हिसाब से एक बहु-विषयक (multi-disciplinary) स्वायत्त उच्च शिक्षण संस्थान तैयार हो जायेगा?

होना क्या-क्या है, अब मैं उसको समझने और समझाने की कोशिश करता हूँ। जो मेरी समझ में आया है, वह मैं आपके सामने रखता हूँ। शब्द प्रयोग हुये है Flexibility (लचीलापन), Multiple options

(बहु-विकल्प), Multi-institute (बहु-संस्थान), Multi-disciplinary (बहु-विषयक), Multi-entry (बहु-प्रवेश), Multi-exit (बहु-निकास), Multi-mode (बहु-प्रणाली), Multi-language (बहु-भाषा)। यह सब आठ साल में क्रियान्वित होगा।

स्कूलिंग के 5+3+3+4 वर्ष पूरे हो जाने के बाद मैं लॉ से शुरू करता हूँ। मैंने लॉ के प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया साल भर पढ़ा, मन नहीं लगा। अभी तक की व्यवस्था के अनुसार मेरा यह साल बेकार हो जाता, लेकिन अब मुझको एक सर्टिफिकेट दे देंगे कि मैंने इतने प्वाइंट प्राप्त किये हैं और कहा जायेगा कि मैं लॉ क्लर्क बन सकता हूँ। इसे ग्रेडिंग कहते हैं। अगर मैंने दो साल पूरे कर लिये और फिर कहा अब मैं पढ़ना नहीं चाहता, तब मुझे डिप्लोमा प्राप्त हो जायेगा और आगे मैं कहीं और पढ़ सकता हूँ।

उससे उल्टा लेता हूँ। किसी ने दो साल इंजीनियरिंग किया और दो साल के बाद उसके मन में आया कि लॉ पढ़ूँगा, वह इस ग्रेडिंग व्यवस्था के आधार पर बाहर आ सकता है और लॉ में कहीं और प्रवेश ले सकता है। लॉ के अन्दर उसने थर्ड इयर में सेफ्टी लॉ पढ़ा, क्योंकि बहु-वैषयिक (Multi-disciplinary) है। इस प्रकार वह हायर डिप्लोमा के साथ क्वालिफाई कर जायेगा। अगर दो साल और पढ़ लिया तो उसे डिग्री मिल जायेगी। तब वह सुपरवाइज़र के स्थान पर अधिकारी बन सकता है, तो चार साल की डिग्री में भी वो एक जगह से दूसरी जगह जा सकता है।

चार साल के बाद मेरे मन में आया कि नहीं मैं ऑरियंटल साइंसेस पढ़ूँगा अर्थात् उस समय की वैज्ञानिकी को पढ़ूँगा या लॉ पढ़ूँगा कि उस समय का लॉ कैसा था। मैं साल भर के लिए पहले संस्कृत भी पढ़ सकता हूँ या पालि भी पढ़ सकता हूँ या वह भाषा पढ़ सकता हूँ जिसमें उसका साहित्य या उस विषय का विषयवस्तु है। उस भाषा को सीखने के बाद मुझको फिर ग्रेड मिलेंगे और मैं अपना पोस्ट ग्रेजुएशन उस विशेषज्ञता के साथ नई फील्ड में कर सकता हूँ। यह पाँच साल में हो गया। छः साल के अन्दर मैं पोस्ट ग्रेजुएट हो गया और अगले दो साल में मैं रिसर्च पूरी करूँगा। यह बहु-लचीलापन (Multi-flexibility) को लेकर के है, बहु-विकल्प हैं। उनमें से कुछ विकल्प बाध्यकारी हैं जो आप को करना ही होगा, जैसे कि आठ विषयों में से चार पढ़ने ही होंगे और उन चार को पढ़ने के साथ-साथ अपने मन से चालीस में से चार विषय चुन सकते हैं।

यह सब अभी क्रियान्वयन होना है। अभी साइंस में, आर्ट में सब्जेक्ट कॉम्बिनेशन होते हैं, लेकिन वह अब विज्ञान और कला के अलग-अलग विभाग को छोड़कर बहु-वैषयिक हो जायेंगे। विज्ञान वाला कला पढ़ सकता है और कला वाला विज्ञान। कोई एक संस्थान छोड़कर के जहाँ वह सब्जेक्ट है वहाँ भी जा सकता है, बाद में वहाँ से वापस अपने संस्थान भी आ सकता है।

इतनी अधिक वैषयिक लचीलापन (disciplinary flexibility) और इतनी वैषयिक विविधता (disciplinary multiplicity) क्या अगले सात वर्षों में हम पा सकेंगे? हमारे लिए यह बहुत बड़ी चुनौती है। मैं पुनः कहना चाहता हूँ। मैंने पाँच कमीशन के नाम लिये, उनकी रिपोर्ट्स के नाम लिये। अगर उन पाँच रिपोर्ट्स

को सही ढंग से क्रियान्वित कर दिया गया होता तो शायद आज नई शिक्षा नीति का नाम न लेकर हम उसी में संशोधित नीति का नाम लेते। डॉ. राधाकृष्णन आयोग की रिपोर्ट उठाकर देखिए आधी पॉलिसी वही है। भाषा के ऊपर, उच्च शिक्षा के ऊपर, शोध के ऊपर, विकास के ऊपर आज भी मुझे वही चीजें मिली जो उस पॉलिसी में थी, वो आज तक क्रियान्वित नहीं हुई।

एक और महत्वपूर्ण विषय यह है कि विदेशी विश्वविद्यालयों के रीजनल सेन्टर यहाँ पर खुलने जा रहे है। बाहर के देशों में विदेशी यूनिवर्सिटी में जाकर-जाकर पढ़ने का वहिर्गमन दो साल में चार गुना बढ़ गया है।

मैं विधि का उदाहरण देकर अपनी बात कहना चाहूँगा। विदेशी वकील भारत में घुसने को तैयार बैठा है। अभी यह नियम बना दिया कि इंग्लैण्ड का वकील दो साल के अन्दर चम्चे और कांटे से खाना सीखने के बाद बार एट लॉ कहलायेगा और भारत आयेगा। जी हाँ! बार एट लॉ ऐसे ही दिया जाता है। वहाँ वकालत नहीं सिखाई जाती है एटिकेट सिखाया जाता है। इसके पूर्व भी यह विषय आ चुका है। मद्रास हाईकोर्ट[9] में भी मुकदमा चला, बम्बई हाईकोर्ट[10] में भी मुकदमा चला, सुप्रीम कोर्ट[11] में भी आया, उन्होंने कहा विदेशी वकील भारत में प्रैक्टिस नहीं करेगा। प्रैक्टिस वो तभी करेगा, जब यहाँ आकर के यहाँ के कोर्स को पास करेगा।

हम कृषि प्रधान देश है। उत्तराखण्ड के अन्दर दो तरह के लैण्ड लॉ अभी भी है। बिहार के अन्दर, ग्रामीण क्षेत्र के अन्दर, जिसको अब आपने झारखण्ड में जोड़ दिया है, चार तरह के रेवेन्यू लॉ है। बनारस का अपना रेवेन्यू लॉ है। ऐसी पारंपरिक पद्धति हमारे यहाँ रही हैं, इनको समझने के लिए यहाँ का कानून जानना जरूरी है। अंतिम निर्णय यह हुआ कि, विदेशी यहाँ वकालत नहीं करेगा।

लेकिन वाणिजिक पद्धति और मध्यस्थता के लिए, न्यायालय ने कहा कि यदि बीसीआई समझता है तो रूल बनाले। बीसीआई ने रूल बनाया तो कहा यहाँ विदेशी को प्रेक्टिस करनी है तो यहाँ के वकील को उसको अपने साथ रखना पड़ेगा। सेकेण्ड पार्ट यहाँ प्रेक्टिस वो नहीं कर सकता। आरबिट्रेशन में भी अगर उसको आना है तो अब रूल बन गये हैं, उसे रजिस्ट्रेशन कराना होगा। बीसीआई ने मना किया है लेकिन विदेशी विश्वविद्यालयों के रीजनल सेन्टर यहाँ पर खुलने जा रहे है।

विधि ने तो मना किया है। उन्होने कहा है कि लॉ से इसको बाहर रखिए। लॉ हम नहीं देंगे। जब वो हमारे कोर्सेस पढ़ायेगा, यहाँ की संस्कृत को पढ़ायेगा, जो चीज़ यहाँ है उसके अनुसार ऑरियंटल सांइस को पढ़ायेगा, वेद को पढ़ायेगा, उपनिषद को पढ़ायेगा, व्याख्या समझायेगा, तब हम डिग्री देंगे लेकिन अगर वो अपने हिसाब से अगर चाहेगा कि पैसा दो डिग्री लो तो चुनौतियाँ आपके सामने हैं, सम्भावनायें मैंने रख दी हैं।

●●●

9 A.K. Balaji v. The Government of India, (AIR 2012 Mad 124)
10 Lawyers Collective v. Bar Council of India, (2010 (2) Mah LJ 726)
11 Bar Council of Indiavs.A.K. Balaji and Ors. (2018 (5) SCC 379)

व्यक्ति की शिक्षा में समाज एवं राज्य का उत्तरदायित्व

प्रांजल बरनवाल[1]

शिक्षा[2] व्यक्ति को जीवन जीने के तरीके सिखाती है और अच्छी शिक्षा-व्यवस्था ही प्रबुद्ध नागरिक तैयार करती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जन्म के बाद अपना पहला पाठ सर्वप्रथम अपनी माँ से ही सीखता है, इसीलिए धर्मसूत्रों में माता को श्रेष्ठ गुरु कहा गया है[3] तत्पश्चात् वह अपने घरेलू वातावरण तथा आसपास के वातावरण जिसके संपर्क में वह आता है उससे कुछ न कुछ सीखता रहता है। इस सीखने के अनुभव का परिणाम यह होता है कि वह धीरे-धीरे वातावरण से अपना सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण शिक्षा में समाज का उत्तरदायित्व देखा जा सकता है जो कि जन्म से लेकर जीवनपर्यंत तक चलता रहता है। अतः शिक्षा का संबंध जितना व्यक्ति से है उससे अधिक समाज से है[4] क्योंकि समाज ऐसी संस्था है जिसके अंतर्गत व्यक्ति, शिक्षण संस्थान व राज्य सभी शामिल होते हैं। ऐसे में व्यक्ति का रिश्ता जितना समाज से पुरातन है उतना ही राज्य और शिक्षा से गहरा नाता है। इसीलिए व्यक्ति वैसा ही होता है जैसी उसकी शिक्षा होती है और समाज वैसा ही होता है जैसी उस समाज की शिक्षा व्यवस्था होती है और विश्व वैसा ही होता है जैसी शिक्षा उसको बनाती है।[5]

सदियों से यह बहस चली आ रही है कि व्यक्ति की शिक्षा का उद्देश्य उसके समाज के हित में हो या अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु या राज्य की मांग के अनुरूप होनी चाहिए। यदि हम प्राचीन काल में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली पर गौर करते हैं तो उसके माध्यम से पहले समाज का हित और फिर राज्य का हित देखा जा सकता है, क्योंकि सहस्त्रों वर्षों से समाज द्वारा अर्जित किया गया ज्ञान, श्रुति शिक्षा के माध्यम से बालक को

1 शोधछात्र (जेआरएफ), मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

2 शिक्षा शब्द का सर्वप्रथम उदाहरण 'तदेतत्त्रयँ शिक्षेद् दमं दानं दयामिति।' - वृहदारण्यक उपनिषद्- 5.2.3 व 'ॐ शीक्षां व्याख्यास्यामः।' तैत्तिरीय उपनिषद्- 1.2.1 में है

3 गौतम धर्म सूत्र- 2.50

4 लज्जाराम तोमर, भारतीय शिक्षा के मूल तत्व, पृष्ठ संख्या1, छठा संस्करण, 2015

5 इंदुमती काटदारे- प्राच्य भारतीय शिक्षा पद्धति एवम् वर्तमान परिदृश्य-एकात्म मानववाद : विभिन्न आयाम,पृष्ठ संख्या 61

हस्तांतरित कर दिया जाता था जिससे वह बालक अपनी राष्ट्रीय संस्कृति एवम् थाती को ग्रहण करता था[6] जिसमें समाज की अग्रणी भूमिका होती थी। वह बालक अपनी उम्र से अधिक ज्ञान को अर्जित कर लेता था और इस प्रकार समाज जीवन का प्रवाह शिक्षा के कारण ही गतिशील होकर विकास की ओर अग्रसर होता था।[7] जैसा कि ए.एस. अल्टेकर ने भी कहा है कि- प्राचीन काल में सभी प्रकार की शिक्षा चाहे वह साहित्यिक हो, या पेशेवर हो उसका मूल उद्देश्य छात्रों को समाज के लिए उपयोगी और नैतिक आचरण युक्त सदस्य बनने के योग्य बनाना है।[8]

शिक्षा भारतीय जीवन का आवश्यक अंग एवं संस्कृति की आधारशिला रही है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में शिक्षा का स्वरूप सुव्यवस्थित, सुनियोजित एवं ज्ञानपरक था तथा जिसका उद्देश्य व्यक्ति के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन का उत्थान और प्रदत्त उत्तरदायित्वों का सम्यक निष्पादन करना था। प्राचीन भारतीय शिक्षा की प्रकृति औपचारिक एवम् अनौपचारिक दोनों ही थी। औपचारिक शिक्षा के प्रमुख केंद्र मंदिर, आश्रम एवम् गुरुकुल आदि थे जहाँ उच्च शिक्षा दी जाती थी, जबकि माता-पिता, परिवार, संन्यासियों के प्रवास आदि अनौपचारिक शिक्षा के सशक्त माध्यम थे।[9] प्राचीन शिक्षाविदों की ऐसी मान्यता थी कि ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है।[10] 'विष्णु पुराण' के अनुसार-विद्या के बिना मानव जीवन व व्यक्तित्व संकुचित होता है। अतः अज्ञानता अंधकार के समान है[11], इसीलिए अक्षर विज्ञ और अभिज्ञ दोनों कर्म करते हैं, किंतु जो कर्म विद्या, श्रद्धा एवं योग से संयुक्त होकर किया जाता है वही प्रबलतर होता है।[12] ऋग्वेद में भी मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार ज्ञान को स्वीकार किया गया।[13] वेद शब्द का अर्थ ही 'जानो' होता है। व्यक्ति को क्या जानना है और क्या नहीं तथा जानने की अवस्था क्या होगी, यही मानवीय जीवन की शिक्षा है। इस शिक्षा का सुंदर दिग्दर्शन भी वेदों में विशद रूप में बताया गया है और इसके लिए ही ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास जैसी आश्रम पद्धतियों का भी निर्माण हुआ है। वैदिक काल में पाठ विषय शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छंद तथा निरुक्त तक ही सीमित थे। इन सब की शिक्षा गुरु गृह परिवार में ही संपन्न होती थी। शिष्यों की वृद्धि होने पर इन्हीं परिवारों ने गुरुकुल का रूप धारण कर लिया।[14] इस समय शिक्षा मुख्य रूप से दो प्रकार से दी

6 लज्जाराम तोमर, भारतीय शिक्षा के मूल तत्व, पृष्ठ संख्या1, छठा संस्करण, 2015

7 वही, पृष्ठ संख्या 2

8 डॉ. ए.एस. अल्टेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृष्ठ संख्या 10-11 द्वितीय संस्करण, 1994

9 वही, पृष्ठ संख्या 30-31

10 आगमोत्थं विवेकच्चद्विधा ज्ञानं तदुच्यते- विष्णु पुराण 6.5.61

11 अन्धं तम इवज्ञानम् दीपवच्चेन्द्रियोद्भवम्- विष्णु पुराण, 6.5.62

12 छान्दोग्य उपनिषद, 1.1.10

13 अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः। - ऋग्वेद, 10.71.7

14 डॉ. सरयू प्रसाद चौबे, भारतीय शिक्षा का इतिहास, पृष्ठ संख्या, 12

जाती थी- पहली मौखिक रूप में जिनमें गुरु के निकट छात्र बैठकर ज्ञान को सुनता था और दूसरी स्वाध्याय अर्थात चिंतन मनन के रूप में।[15]

वैदिक काल से ही शिक्षा का तात्पर्य प्रकाश के स्रोत से रहा है और कहा भी गया है कि ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है जो उसे मूल-तत्व को समझने योग्य बनाकर सही कार्यों में प्रवृत्त करता है[16] शिक्षा से प्राप्त प्रकाश एवम् परिज्ञान से व्यक्तित्व का पूर्ण रूपांतरण हो जाता है और एक वैदिक ऋषि का वचन है कि यदि कोई दूसरों से बड़ा है तो इसका तात्पर्य यह नहीं की उसके पास कोई अतिरिक्त नेत्र या हाथ होते हैं, बल्कि वह इसलिए बड़ा है क्योंकि उसकी बुद्धि और मस्तिष्क शिक्षा के द्वारा अधिक प्रखर एवं परिष्कृत होता है।[17] इस काल में शिक्षा प्राप्ति का अधिकार भी समान रूप से सभी को था। द्विजों के अतिरिक्त अन्य वर्ण को भी शिक्षा प्रदान की जाती थी, जिसकी पुष्टि निम्न श्लोकों के माध्यम से होती है-

यथेमां वाचं कल्याणीम् आवदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्या शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।[18]

ऋषि भर्तृहरि भी कहते हैं कि- विद्या विहीन मनुष्य पशु है[19] अर्थात विद्या ही हमें मनुष्य बनाती है। अतः शिक्षा रहित जीवन व्यर्थ एवं मूल्यहीन होता है।[20] एक नीतिकार के अनुसार शिक्षा संस्कार से पूर्व एक ब्राह्मण भी शूद्र रहता है और शिक्षा ही उसके स्वभाव को शुद्ध एवं सुसंस्कृत बनाती है।[21] इसके अतिरिक्त स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्ति का पूर्ण अधिकार था। इसके साथ ही साथ समाज में उनको विशेष सम्मान भी प्राप्त था। ऋग्वेद से कई ऋषिकाओं की जानकारी प्राप्त होती है, जिन्होंने अनेकानेक मंत्रों और ऋचाओं की रचना की थी।[22] अपाला नामक विदुषी महिला वैदिक साहित्य में रुचि रखने के साथ ही साथ अपने पिता के कृषि कार्य में भी सहयोग प्रदान करती थी।[23] निःसंदेह यह स्त्री शिक्षा के महत्व को प्रतिबिम्बित करता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा के विषय में ए.एस. अल्टेकर ने लिखा है कि- ईश्वर भक्ति, धार्मिक भावना, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्य का पालन, सामाजिक कुशलता की

15 वही,
16 सुभाषित रत्न संग्रह, पृ. 194
17 ऋग्वेद -10.7.17
18 यजुर्वेद - 26.2
19 विद्या विहीनः पशु - नीति शतक, 16, तृतीय संस्करण वि.सं. 2068, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
20 सुभाषित रत्न संग्रह, पृ. 31
21 वही पृ. 18
22 ऋगवेद, 1.11.7, 5.28.6
23 वही 8.91

उन्नति तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार भारतीय शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य थे।[24] वैदिक शिक्षा प्रणाली की प्रमुख विशेषता इस रूप में है कि यह मानव व्यक्तित्व के दोनों पक्षों चारित्रिक एवं व्यवहारिक को संतुष्ट करती है। वह छात्र को जीवन की प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार करती थी तथा उनके व्यक्तित्व का सर्वतोन्मुखी विकास करती थी। गुरु के आश्रम में रहकर बालक वहाँ के आवश्यक कार्यों का संपादन कर प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करता था तो वहीं गुरु के निकटतम संपर्क तथा अंतेवास के माध्यम से गुरु के आदर्श चरित्र का अनुकरण कर व्यक्तित्व निर्माण करता था। इसीलिए वैदिक कालीन शिक्षा का मुख्य ध्येय 'सा विद्या या विमुक्तये'[25] था, जिसमें आत्माभ्युदय संबंधित वैयक्तिक गुणों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। यहाँ पर मुक्ति का आशय केवल मोक्ष के ही अर्थ में न होकर व्यावहारिक जीवन में अज्ञान के वशीभूत होकर प्रवृत्तियों जैसे- काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि से भी है।

वैदिक कालीन ऋषियों ने 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'[26] के द्वारा सामाजीकरण की भावना से राष्ट्र के उन्नयन में योगदान का उपदेश दिया है तथा इसके माध्यम से पर्यावरण के प्रति मानवीय कर्तव्यों एवं मानवीय संबंधों की भावनाओं को साथ जोड़ने का भी प्रयत्न किया गया है।

वैदिक शिक्षा का प्रयोजन व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकास करना था, जिससे उसके आचरण की शुद्धता बनी रहे और उसके आध्यात्मिक प्रशिक्षण के माध्यम से शारीरिक क्षमता को बनाए रखना और व्यक्ति अनुशासनात्मक जीवन जिए 'सत्यं वद! धर्मं चर! स्वाध्यान्मा प्रमदः!'[27] अर्थात सत्यनिष्ठ अभिव्यक्ति, धर्माचरण के अनुरूप आचार-विचार करे तथा अध्ययन के प्रति निश्चल भाव वेदाध्यायी का परम कर्तव्य था, जिसमें अनुशासनात्मक जीवन पद्धति के बीज अंकुरित होते दिखाई देते थे। अनुशासन में आंतरिक व वाह्य दो विकास में आंतरिक अनुशासन अत्यधिक महत्वपूर्ण था, क्योंकि आंतरिक अनुशासन ही सामाजिक अनुशासन का आधार था, जो कि वैदिक शिक्षा की प्रमुख विशेषता है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति की चेतना को सामाजिक स्तर से तादात्म्य स्थापित कराकर अभ्युदय की ओर अग्रसारित करना है। प्राचीन शिक्षाविदों की मान्यता थी कि समस्त वेदों का ज्ञाता भी यदि चरित्रवान नहीं है तो वह आदरणीय नहीं हो सकता है, जबकि केवल गायत्री मंत्र का जानकार यदि चरित्रवान है तो वह पूजनीय होगा।[28]

लज्जाराम तोमर के अनुसार - देशभर में विभिन्न शिक्षण संस्थाओं एवं विद्यापीठों का विकास हुआ, जो गुरुकुलीय आश्रम, ऋषिकुल, आचार्यकुल, तक्षशिला, नालंदा, वल्लभी आदि रूप में वर्णित है।[29] ये

24 डॉ. ए.एस. अल्टेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृष्ठ संख्या 20-21 द्वितीय संस्करण, 1944

25 विष्णु पुराण, 1.19.41

26 अथर्ववेद,12.1.12

27 तैत्तिरीय उपनिषद् 1.11

28 मनु,2.118

29 लज्जाराम तोमर, भारतीय शिक्षा के मूल तत्व, पृष्ठ संख्या15, छठा संस्करण, 2015

गुरुकुल और आश्रम परंपरा गुरुकुलीय प्राचीन शिक्षा पद्धति की आदर्श व्यवस्था थी। प्राचीन गुरुकुलों में उज्जयिनी स्थित संदीपनि मुनि का आश्रम प्रसिद्ध था[30] तो वहीं भरद्वाज और वाल्मीकि ऋषि के आश्रम उच्चकोटि के गुरुकुल थे।[31] प्रयाग के संगमट पर मुनि भरद्वाज के आश्रम में छात्रों द्वारा वेद पाठ होता था। बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि उस समय जिज्ञासु छात्र गुरुकुल में निवास कर शिक्षा प्राप्त करते थे।[32] चंपा निवासी दिशाप्रमुख के आश्रम में 500 विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। कौशल के सुनेत और सेल उस समय के विख्यात आचार्य थे।[33] मिथिला के ब्रह्मायु ब्राह्मण अनेक शिष्यों के आचार्य थे, जिसके अंतेवासी उच्च कोटि के विद्वान थे।[34] गुप्त काल में भी गुरुकुल शिक्षा निर्बाध रूप से चलती रही, क्योंकि गुप्तकालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि आचार्यों को ग्राम दान में दिए जाते थे। आचार्य देव शर्मा को ब्रह्मपूरक ग्राम दान में दिया गया था।[35] बाणभट्ट ने भी हर्षचरित में लिखा है कि वह विद्या प्राप्ति के लिए कई वर्षों तक गुरु के आश्रम में रहे थे।

इस प्रकार शिक्षा जो कि एक त्रिमुखी प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षक, शिक्षार्थी व पाठ्यक्रम इसके तीन बिंदु हैं। जिसमें प्रमुख बिंदु पाठ्यक्रम होता है, क्योंकि इसके माध्यम से ही शिक्षक और शिक्षार्थी की अंतःक्रिया से ही अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। प्राचीन काल से ही गुरुकुल व आश्रम पद्धति की परंपरा सर्वथा समाज में बनी रही, जिसका उल्लेख मुस्लिम लेखक अलबरूनी ने भी किया है कि जिज्ञासु छात्र दिन रात गुरु की सेवा में तल्लीन रहकर विद्या प्राप्त करते थे।[36] यह व्यवस्था कमोबेश मध्यकाल में भी जारी रही भले ही बड़े व्यापक पैमाने पर मुस्लिम आक्रमणकारियों के द्वारा नालंदा जैसे संस्थानों को नष्ट किया गया था, फिर भी स्थानीय राजाओं, व्यापारियों के द्वारा शिक्षण संस्थाओं को अनुदान के माध्यम से शिक्षा की गतिविधियाँ अबाध रूप से राज्य के हस्तक्षेप के बिना संचालित की जा रही थी। किंतु भारत में जब अंग्रेजों का शासन प्रारंभ हुआ तो अंग्रेजों ने भारत में अपने शासन को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से भारतीय शिक्षा पद्धति में हस्तक्षेप करना प्रारंभ किया, जिसकी व्यापक शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से होती है जब 1813 के चार्टर एक्ट के द्वारा प्रत्येक वर्ष एक लाख रुपए शिक्षा पर खर्च करने का निर्णय किया गया, जो कि भारतीय शिक्षण संस्थानों को राज्य के अधीन लाने के प्रयास की शुरुआत थी। इससे पहले भी

30 विष्णुपुराण, 3.10.12

31 रामायण, 6.123.51

32 जातक कथा 6 पृ. 32

33 अंगुत्तरनिकाय, पृ. 37

34 मज्झिमनिकाय 2, पृ. 33-34

35 प्लीट, कार्पस इनस्क्रिप्शन्स इंडकेरम भाग-3 अभिलेख 56

36 ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ. 168

चार्ल्स ग्रांट[37] ने भी भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली को नष्ट करने के लिए अंग्रेजी भाषा तथा शिक्षा नीति का ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रस्ताव रखा और भारत की नई पीढ़ियों को हिंदुस्तानी अंग्रेज बनाने की साजिश रची, जिससे मैकाले मिनट[38] में एक नया स्वरूप दिया और भारत में पाश्चात्य शिक्षा की नींव रखी तथा यूरोपीय शिक्षा प्रणाली को भारतीय प्राचीन शिक्षा पद्धति से श्रेष्ठ साबित करने का प्रयास किया और उसकी उपेक्षा करते करते उसे नष्टकर उसके स्थान पर यूरोपीय शिक्षा पद्धति को लागू कर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया, जिसका मुख्य उद्देश्य भारत को तोड़ने की प्रक्रिया थी, इसके परिणामस्वरूप 'यूरोपीय शिक्षा प्राप्त लोगों के विचार मानस व्यवहार दृष्टिकोण सभी कुछ बदलने लगे, फलतः हमें गुलामी रास आने लगी और अंग्रेजी राज में ही हमें गौरव का अनुभव होने लगा। जो कुछ भी यूरोपीय है वह विकसित है, आधुनिक है, श्रेष्ठ है और जो कुछ भी अपना है वह निकृष्ट है, हीन है और लज्जास्पद है, ऐसा हमें लगने लगा।'[39] गौर करने की बात यह है कि मिशनरियों का मुख्य लक्ष्य धर्म परिवर्तन करना था और धर्म परिवर्तित व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा विशेषकर अपने धर्म परिवर्तन संबंधी क्रियाकलाप के लिए भारतीय सहायकों को प्रशिक्षित करने के लिए वे शैक्षिक कार्य आरंभ करने के लिए बाध्य थे।[40]

जैसा कि सर्वविदित है कि मनुष्य की सांस्कृतिक विरासत का अनमोल खजाना भी मनुष्य की मातृभाषा में ही सुरक्षित होता है और जब छात्रों को मातृभाषा में शिक्षा के अभ्यासक्रम से बाहर कर दिया जाता है तो उसकी मातृभाषा में सहस्त्राब्दी से विद्यमान विद्वतजनों के ज्ञान, पीढ़ियों से संरक्षित कहानियाँ, लोकगीत इत्यादि से भी वह व्यक्ति वंचित हो जाता है, जो कि मैकाले की शिक्षा का अभीष्ट लक्ष्य था और वह इस लक्ष्य में बहुत सफल हुआ[41] जिसके कारण भारतीय लोग अपनी प्राचीन संस्कृति पर गौरव करने के बजाय उसमें खामियाँ ढूँढने लगे और पश्चिमी विज्ञान एवं तर्क को आधार बनाकर वर्षों से संचित ज्ञान को तर्कहीन एवं कर्मकांडी बताकर सिरे से खारिज कर दिया गया, क्योंकि 'किसी भी समाज रूपी वृक्ष की जड़ तो उस समाज की शिक्षा-नीति में ही रहती है और यदि शिक्षा-नीति में ही वर्गभेद एवं शोषणवाद का संरक्षण जारी रहे तो समाज को वर्गभेद, भ्रष्टाचार, शोषण तथा नैतिक पतन से बचाया नहीं जा सकता है।'[42] इस प्रकार अगर देखा जाए तो औपनिवेशिक शासन के दौरान राज्य के अधीन जो शिक्षा हम पर थोपी गई वह हमारे मूल सिद्धांतों के बिल्कुल विपरीत थी, जिसकी आलोचना करते हुए गांधी जी 1931 में कहते हैं कि 'भारत में आज 50 या 100 वर्ष पूर्व से अधिक निरक्षरता समाज में दिखाई देती है और अंग्रेज अधिकारी

37 ब्रिटिश पार्लियामेंट का सांसद

38 गवर्नर जनरल के काउंसिल का कानूनी सदस्य मैकाले द्वारा प्रस्तुत घोषणा पत्र

39 धर्मपाल, रमणीय वृक्ष 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा, संपादकीय, पृष्ठ संख्या, 14

40 मैकाले, एलफिंस्टन और भारतीय शिक्षा, पृष्ठ संख्या 103, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2017

41 वही, पृष्ठ संख्या,183

42 वही, पृष्ठ संख्या,188

शिक्षा और संबंधित विषयों पर ध्यान देने के बजाय शिक्षा पद्धति को नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। उन्होंने भारत की शिक्षा परंपरा के प्राण ले लिए और हमारी शिक्षा पद्धति की जड़ें नींव से उखाड़ दी गई है। फलतः हमारा शिक्षा रूपी वृक्ष आज नष्ट हो रहा है।'[43] जहाँ तक वर्तमान शिक्षा का प्रश्न है उसका उद्देश्य स्पष्ट न होने के कारण रोजगार जनित प्रतिस्पर्धाएँ, चिंता, हताशा, निराशा और कुंठा पैदा करने के लिए पर्याप्त है और इसके कारण प्रतिभा का पलायन होना, मौलिकता का ह्रास होना तथा मानवीय संवेदनाओं का क्षय होना स्वाभाविक है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि शिक्षा जो कि प्राचीन काल से संस्कार एवं नैतिक प्रक्रिया कि माध्यम थी उसमें वर्तमान आधुनिक शिक्षा प्रणाली में संस्कार सिद्धांत की घोर उपेक्षा की जा रही है, जिसकी वजह से शिक्षा का उद्देश्य निष्फल प्रतीत हो रहा है, जिसका परिणाम हमें समाज में शिक्षित युवाओं में बढ़ती अपराध, हिंसा एवं असंवैधानिक कार्यों में संलिप्तता दिखाई पड़ती है। यही नहीं देश के शिक्षण संस्थानों से शिक्षित युवक ही इन सभी कार्यों में लिप्त दिखाई देते हैं तो कहीं-न-कहीं यह हमारी शिक्षा व्यवस्था का नैतिक पतन ही है, क्योंकि औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति ने सिर्फ नौकरी प्रेरक शिक्षा को जन्म दिया न कि समाज में विद्वता और जीवन-मूल्य, नैतिकता, चरित्र-निर्माण आदि को जन्म देने वाली शिक्षा का सृजन किया।

●●●

43 धर्मपाल,रमणीय वृक्ष 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा,पृष्ठ संख्या,58

संक्षिप्त टिप्पणी

उच्च शिक्षा में विदेशी संस्थाओं का प्रवेश

डा. हरबंश दीक्षित[1]

उच्च शिक्षा में विदेशी संस्थाओं की भागीदारी के लिए कानूनी ढाँचे को अन्तिम रूप दिया जा रहा है। इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने ''यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमीशन (सेटिंग अप एण्ड आपरेशन ऑफ कैम्पसेज ऑफ फारेन हायर एजुकेशनल इन्स्टिट्यूशन्स इन इंडिया) रेगुलेशन्स 2023'' एक मसौदा जारी किया है। दुनिया में 500 तक की रैंकिंग वाली प्रतिष्ठित संस्थाओं को भारत में अपने कैम्पस खोलने की अनुमति होगी। इसके लिए उन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अनुमति लेनी होगी। इन संस्थाओं को पर्याप्त स्वायत्तता दिए जाने का प्रस्ताव है। अन्य बातों के अलावा उन्हें भारतीय या विदेशी छात्रों के प्रवेश के लिए नियम बनाने, शुल्क निर्धारित करने, अपना पाठ्यक्रम तय करने तथा शिक्षकों की नियुक्ति के लिए नियम बनाने की छूट होगी। फारेन एक्सचेंज मैनेजमेंट ऐक्ट (फेमा) 1999 के अधीन रहते हुए उन्हें अपनी आय को देश के बाहर भेजने की भी छूट होगी।

ऐसा माना जा रहा है कि विदेशी संस्थाओं के आने से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक सकारात्मक बदलाव आएगा। हमारी संस्थाओं को अपने स्तर को निखारने की प्रेरणा मिलेगी। अन्तरराष्ट्रीय अकादमिक सहयोग से प्रगति के नए रास्ते खुलेंगे और अध्ययन के लिए विदेश जाने वाले छात्रों को अपने यहाँ रोक कर विदेशी-मुद्रा की बचत हो सकेगी।

नियमावली के मसौदे में कहा गया है कि विदेशी संस्थानों को अपनी प्रवेश प्रक्रिया तथा शुल्क तय करने का अधिकार होगा। यह भारतीय शिक्षण संस्थाओं पर लगायी गयी पाबन्दी के ठीक उलट है। भारतीय शिक्षण संस्थाओं को अपनी मर्जी से शुल्क तय करने का अधिकार नहीं है। प्रायवेट संस्थाओं पर भी निगरानी रखने के लिए नियामक संस्थाएं हैं। उसके बाद अदालतें भी समय-समय पर जनहित में दिशा निर्देश जारी करती रहती हैं। पी.ए. इनामदार बनाम महाराष्ट्र (2005) के मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय के सात न्यायाधीशों की पीठ ने स्पष्ट किया कि शिक्षा 'व्यापार' नहीं अपितु 'सेवा' है, इसलिए निजी संस्थाएं भी शिक्षण संस्थाओं को अपने व्यापार के रूप में नहीं चला सकते। इस आधार पर अदालत ने कई मामलों में शुल्क की गैरवाजिब बढ़ोत्तरी को रद्द कर दिया। कुछ मामलों में तो सरकार द्वारा स्थापित निगरानी संस्थाओं के इस तरह के आदेशों को रद्द कर दिया गया। ताजा मामला 9 नवम्बर 2022 का है। महाराष्ट्र सरकार ने

1 प्रोफेसर एवं डीन, विधि संकाय, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद।

निजी मेडिकल कॉलेजों की मेडिकल की फीस को सात गुना बढ़ाकर 24 लाख रूपए तक करने की अनुमति दी थी। इसे चुनौती दी गयी। सर्वोच्च न्यायालय ने रद्द कर दिया एक और बार फिर स्पष्ट किया कि शैक्षिक संस्थानों को व्यापारिक केन्द्र नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि शिक्षा व्यापार नहीं अपितु सेवा है।

इसकी कल्पना भी करना कठिन है कि कोई विदेशी संस्था भारत में सेवा करने के लिए अपना कैम्पस खोलेगी। मुनाफा कमाना ही उनका मूल उद्देश्य होगा। अदालतों द्वारा तय किए गए दिशा निर्देशों से अलग हटकर उन्हें मुनाफा कमाने की छूट हासिल हो जाएगी। यह शिक्षण संस्थाओं में मुनाफाखोरी की संस्कृति को बढ़ावा देगा। यह अपने देश की शिक्षण संस्थाओं के लिए भी कठिनाइयाँ पैदा करेगा। हमारे देश की शिक्षण संस्थाअें को सरकारी और अदालतों के दिशा निर्देशों के अनुसार काम करना होता है जबकि विदेशी संस्थाओं पर कोई पाबन्दी नहीं रहेगी। ऐसे में हमारी संस्थाओं को तमाम बन्दिशों के साथ उन संस्थाओं से मुकाबला करना होगा जिन्हें स्वतंत्र रूप से कुछ भी करने का अधिकार होगा। यह व्यवस्था न्यायपूर्ण नहीं है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मौजूदा मसविदे में विदेशी संस्थाओं को केवल मुनाफा कमाने की ही छूट नहीं हासिल है। चूँकि इसके उपयोग के बारे में कोई दिशा निर्देश नहीं है। अतः उसका उपयोग किसी गैर-शैक्षणिक कार्य के लिए भी हो सकता है। यह चिन्ता का विषय है और इस पर भी ध्यान देने की जरूरत है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मसौदे में विदेशी संस्थाओं को शिक्षकों की नियुक्ति करने के मामले में अपने मानक निर्धारित करने तथा अपने पाठ्यक्रम और उसकी विषय वस्तु तय करने का अधिकार होगा। शिक्षण संस्थाएं राष्ट्र के उन्नयन की आधार-शिला होती हैं। वे अपने छात्रों का मार्गदर्शन करती हैं। पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्र केवल जानकारी ही नहीं हासिल करते अपितु उनके माध्यम से उनका मानसिक अभिमुखीकरण भी होता है। शिक्षण-संस्थाओं पर यह गुरुतर दायित्व होता है कि वे छात्रों को सकारात्मक दिशा दें। किन्तु कई बार ऐसा नहीं भी होता। कुछ संस्थाएं ऐसी सोच के मुताबिक अपने छात्रों को तैयार करती हैं जो उनके एजेन्डे को प्रसारित करने और उसे लागू करने में मदद करें। अपनी शिक्षण संस्थाओं पर निगरानी रखने का व्यापक तंत्र उपलब्ध है, किन्तु विदेशी संस्थाओं के सम्बन्ध में केवल यह कहा गया है कि वे ऐसे पाठ्यक्रम संचालित नहीं करेंगे जो राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल हो। यह शब्दावली अस्पष्टता की सीमा तक व्यापक है। इस पर विचार करने की जरूरत है और हो सके तो नियामक संस्था बनाने का विकल्प भी सोचा जा सकता है ताकि राष्ट्रीय हित की अनदेखी को रोका जा सके।

सरकार ने आजादी के बाद शिक्षा पर भरपूर ध्यान दिया। गरीबों और वंचितों के लिए इसके दरवाजे खुले। यही कारण है कि आम परिवारों के बच्चे आज दुनिया भर के प्रतिष्ठित संस्थाओं में शीर्ष पदों पर हैं। समाज के वंचित वर्गों को आरक्षण और स्कॉलरशिप देकर उनके और राष्ट्र की प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया गया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मसौदे में इसके बारे में ''जरूरत-आधारित स्कॉलरशिप'' दिए जाने

का सुझाव देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली गयी है। इसका परिणाम यह होगा कि विदेशी संस्थाओं को यहाँ के नागरिकों से मोटी फीस लेकर मुनाफा कमाने की छूट होगी, किन्तु सामाजिक सरोकारों के लिए उनकी कोई जबाबदेही नहीं होगी। यह उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गहरी खाई पैदा करेगा। केवल अभिजात्य वर्ग के छात्र ही वहाँ पढ़ पाएंगे और उनके सहपाठी के रूप में समाज के वंचित वर्ग का छात्र मौजूदा नहीं होगा, जिसके साथ बैठकर सामाजिक समरसता का आचरण विकसित होता है। नीति-निर्माताओं को इस पर ध्यान देने की जरूरत है।

●●●

शिक्षा के माध्यम से एकात्म चिन्तन के इस वैचारिक आन्दोलन को पूरे देश में खड़ा करना पड़ेगा। आज दुनिया मार्क्सवाद और पूंजीवाद दोनों विचारधाराओं का विकल्प चाहती है, क्योंकि यह दोनों ही मार्ग आज असफल दिखाई दे रहे हैं, इसलिये भारतीय चिन्तन की प्राचीन परम्परा के आधार पर तीसरा मार्ग प्रस्तुत करने का नैतिक दायित्व आज हम सब के ऊपर है। इसकी न केवल हमारे देश को अपितु सम्पूर्ण संसार को आवश्यकता है।

- श्रद्धेय अशोक सिंहल

अरुंधती वशिष्ठ अनुसन्धान पीठ
महावीर भवन, 21/16, हाशिमपुर रोड, टैगोर टाउन
प्रयागराज-211002 मो. 919453929211
E-mail : nationalthought@gmail.com
Web : www.avap.org.in

2230-7001

Price : 200/-